

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

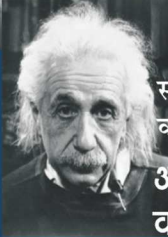
जुलाई-सितम्बर • 2005 दस रुपये

# आह्वान

कैम्पस टाइम्स



## भगतसिंह की स्मृति के निहितार्थ



सापेक्षिकता सिद्धान्त की सौवीं वर्षगांठ पर आइन्सटीन होने का मतलब

अमेरिकी फाउण्डेशन : मुखौटों के पीछे का सच • संसदीय बातबहादुरों के कारनामे शासन तंत्र की आपराधिक संवेदनहीनता • शिक्षा में सुधार बनाम एनजीओकरण पूंजीवाद की नई गुलामी • मैं से हम तक की यात्रा • कन्याधन योजना की असलियत सत्ताधारियों का आतंकवाद • कविताएं • अगर तुम युवा हो!



बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की पुण्य तिथि (28 अगस्त) पर

तुम्हारे पंजे देखकर  
डरते हैं बुरे आदमी  
तुम्हारा सौष्ठव देखकर  
खुश होते हैं अच्छे आदमी  
यही मैं चाहूँगा सुनना  
अपनी कविता के बारे में।



अध्यापक, अक्सर मत कहो कि तुम सही हो  
छात्रों को उसे महसूस कर लेने दो खुद-ब-खुद  
सच को थोपो मत:  
यह ठीक नहीं है सच के हक में  
बोलते हो जो उसे सुनो भी।

● बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

## आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

➤ भारतीय क्रान्ति का रास्ता मेहनतकश वर्गों के नेतृत्व में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति का रास्ता है। यह नई समाजवादी क्रान्ति का रास्ता है। यह शहीदेआज़म भगतसिंह का रास्ता है। क्रान्ति ही नाउम्मीदों की उम्मीद है। रसातल के अंधेरे में जीने वालों की ज़िन्दगी की रोशनी है। मृत्यु के अवसाद को तोड़ने वाले उत्सव का आह्लाद है। “आह्वान” इस तूफान का मुक्त कण्ठ से आह्वान करता है। “आह्वान” इस तूफान का आनन्द लेने के लिए सभी युवा तूफानी पितरेल पक्षियों को न्यौता देता है।

➤ पूरा भारतीय समाज आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा है। अब यह सच्चाई एकदम उजागर हो चुकी है कि रुग्ण-विकलांग, बूढ़ा-बौना भारतीय पूँजीवाद आम जनता को कुछ भी सकारात्मक नहीं दे सकता। मेहनतकशों की ज़िन्दगी को इसने लूटमार, उत्पीड़न-शोषण और असह्य पीड़ा-व्यथा के अन्धेरे रसातल में ढकेल दिया है। अथाह दुखों के सागर में ऐश्वर्य के द्वीप और विलासिता की मीनारें, संसद में पूँजीपतियों की दलाल चुनावी पार्टियों के बहसबाजों की धींगामुश्ती, विदेशी लुटेरों को लूट की खुली छूट, भ्रष्टाचार के नित-निरन्तर भंग होते कीर्तिमान, संवेदनाओं को कुंद करती विकृत-बीमार साम्राज्यवादी-पूँजीवादी संस्कृति का धीमा जहर, संचार माध्यमों पर पूँजी की सर्वग्रासी पकड़, दिवालिया अर्थतंत्र, नंगा राजनीतिक तंत्र, बिकता न्याय, बेतहाशा मंहगी होती जा रही निरर्थक अनुपयोगी- अवैज्ञानिक शिक्षा, मामूली चिकित्सा के अभाव में मरते लोग—यही आज का वह नारकीय सत्य है जिसे फिलहाल, हारी हुई मानसिकता के शिकार लोगों ने अपनी नियति मान लिया है। इसे बदलने का रास्ता क्रान्ति का रास्ता है। क्रान्ति कठिन है, क्रान्ति का रास्ता लम्बा है, ध्वंसकारी है, पर इसके बिना नये का निर्माण असम्भव है। यही आज का ठण्डा सत्य है—नंगा सत्य है—पर यही मुक्तिदायी सत्य है। यही ‘आह्वान’ का निर्भीक उद्घोष है।

## इस अंक में

<b>पाठक मंच</b>	<b>4</b>
<b>अपनी ओर से</b>	
भगतसिंह की स्मृति के निहितार्थ	<b>5</b>
<b>सामयिकी</b>	
अमेरिकी फाउण्डेशन : मुखौटों के पीछे का सच	<b>11</b>
संसदीय बातबहादुरों के कारनामे	<b>18</b>
प्रधानमंत्री महोदय की अमेरिका यात्रा	<b>18</b>
<b>समाज</b>	
शिक्षा में सुधार बनाम एनजीओकरण	<b>47</b>
शासन तंत्र की आपराधिक संवेदनहीनता	<b>49</b>
<b>युवा चिन्तन</b>	
आइन्स्टीन होने का मतलब	<b>19</b>
<b>साहित्य</b>	
अगर तुम युवा हो!	<b>8</b>
होसे मारिया सिसों की पाँच कविताएँ	<b>30</b>
<b>सकर्मक विमर्श</b>	<b>32-39</b>
अरबपति बनाम कौड़ीपति / पूँजीवाद की नई गुलामी / अब इंजीनियरिंग-मेडिकल भी रोजगार की गारण्टी नहीं / क्रांतिकारी छात्र राजनीति से घबराये हुज़मरान / आदमखोर शिक्षा व्यवस्था की बलि चढ़े मासूम बच्चे / “पैदा हुई पुलिस तो इबलीस ने कहा...” / मैं से हम तक की यात्रा : वर्तमान चुनौतियाँ / कन्या धन योजना की असलियत / जनता के भगवान डॉक्टर, डॉक्टर का भगवान / पैसा ‘सर! आप क्या बेच सकते हैं?’	
<b>विश्व पटल पर</b>	
सत्ताधारियों का आतंकवाद	<b>10</b>
<b>स्मृति-शेष</b>	
विज्ञान और तर्क के उत्कट योद्धा	<b>41</b>
<b>नयी कलम</b>	<b>42-44</b>
संदीप / नीतू / बेबी / पवन की कविताएँ	
<b>गतिविधि बुलेटिन</b>	<b>45</b>

## आह्वान

कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 13 अंक 2  
जुलाई-सितंबर 2005

सम्पादक मण्डल  
कविता/अभिनव

सज्जा  
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य  
दस रुपये  
वार्षिक  
चालीस रुपये  
(डाक व्यय सहित 48 रुपये)

सम्पादकीय कार्यालय : बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली  
फोन : (011) 55976788 ईमेल: ahwan\_campus\_times@rediffmail.com  
स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा नौजवान कार्यालय, कल्याणपुर, गोरखपुर से प्रकाशित एवं  
उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित।

**आह्वान विचारोत्तेजक है।**

राजस्थान विश्वविद्यालय (जयपुर) के बाहर दो युवा साथियों (भूलवश नाम याद नहीं) के आत्मीय वार्तालाप द्वारा (ता: 20/12) आह्वान से परिचित हुआ। दोनों साथियों को धन्यवाद कि उन्होंने मेरे वैचारिक स्तर को बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण पत्रिका से परिचित कराया।

पत्रिका के मुख पृष्ठ के अन्दर छपे एदुआदों खालीआनों का कथन पसन्द आया जो वर्तमान व्यवस्था पर सटीक टिप्पणी है। अमरकान्त की कहानी 'डिप्टी कलक्टरी' कई दिनों से पढ़ने की इच्छा थी। बेरोजगार युवा मन और उसके परिवार की दशा पर लिखी बहुत मार्मिक कहानी है, 'डिप्टी कलक्टरी'। सभी समसामयिक लेख अच्छे लगे जो बहुत से भ्रमों और शंकाओं को तोड़ते हैं।

(1)

मैं असभ्य हूँ, और सभ्यता की परिभाषा में मुझे माना गया, एक पेड़ सख्त, बेकार, निष्ठुर। मुझे हमेशा छला गया इसलिए मैं छँटता रहा छँटने से मेरा तन बढ़ता रहा उनकी मजबूती के दायरे तक। अचानक एक रोज सभ्य समाज के दरवाजों एवं खिड़कियों के लिए मुझे कटना पड़ा जो तय था मेरे पोषण के साथ

(2)

सभ्य और असभ्य के बीच एक ही कार्य का होना तय करता है एक का बड़प्पन और एक का बौनापन एक का अधिकार और दूसरे का भाग्य उनका गाड़ियों में घूमना और हमारा बनाना

उनका लज्जतदार खाना और हमारा उगाना उनका जूते पहनना और हमारा चमकाना साथ ही इस सदी का सबसे भयावह सच उनका रेशम पर सोना और हमारा जगते रहना ताकि जागकर हम उनकी रेशमी नींद के शत्रुओं का मुकाबला कर सकें।

**ललित कुमार दक  
उदयपुर, राजस्थान**

**आह्वान**

सो रहा जहाँ, सो रहा युवक थम गयी क्रान्ति वीरों की। सपने ही बस सपने अब तक, है युवक सो रहा सपनों में। वीरों की बलि सब भूल गए, हैं सिमट चुके सब आँगन में। इच्छा सीमित, कदम थम गये। क्या रजनी विस्तार कर गयी। हुआ नहीं यदि ऐसा कुछ, तो क्यों विप्लव मशाल बुझ रही। जीने से मरना बेहतर है, यदि स्वतन्त्रता बस नाम रह गयी। क्या बची नहीं ताकत हममें, उनके सपने देदीप्यमान करें। बेहतर होगा हम मर जाएँ, या वीरों जैसा कुछ काम करें। आजाद, भगत, बटुकेश्वर, बिन चिन्ता सब कुछ झेल गए। उनकी यादें न सँजो सके, शायद हम इतने भीरु हुए। पूर्ण स्वतन्त्रता मिली कहाँ, नवयुवकों नया इंकलाब करो। नयी दिशा के सृजन हित, नवयुवकों फिर से क्रान्ति करो। भारत माता आवाज दे रहीं, इंकलाब करो, इंकलाब करो।

**चन्देश्वर यादव  
लखनऊ**

**हमें तो साथ चलना है**

हमें तो साथ चलना है हमें तो साथ चलना है इस लूट और शोषण के विरुद्ध नया युद्ध लड़ना है मिटा के पूंजी का राज हमें नया समाज रचना है हमें तो साथ चलना है हमें तो साथ चलना है जात-पात की जंजीरों ने हमें जकड़ रखा है गले-सड़े रीति-रिवाजों ने हमें पकड़ रखा है तोड़ के जंजीरों और दीवारों हमें नया मानव गढ़ना है हमें तो साथ चलना है हमें तो साथ चलना है नौकरी का पड़ा अकाल, पढ़े-लिखे हुए बेकार बढ़ रही है मंहगाई और शिक्षा हो गई व्यवसायी यही एकमात्र तोड़ है इस व्यवस्था को पलटना है हमें तो साथ चलना है हमें तो साथ चलना है

**गौरव, दिल्ली**

**एक अपील**

**'आह्वान कैम्पस टाइम्स'** सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, फण्डिंग एजेंसियों, पूँजीवादी घरानों एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। जनता का वैकल्पिक मीडिया सिर्फ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए। हमारी यह दृढ़ मान्यता है।

अतः हम अपने सभी पाठकों-शुभचिन्तकों-सहयोगियों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें।

जन्मदिन (28 सितम्बर के अवसर पर)

# भगतसिंह की स्मृति के निहितार्थ

हमें तुम्हारा नाम लेना है  
एक बार फिर  
गुमनाम मंसूखों की शिनाख्त करते हुए  
कुछ गुमशुदा साहसिक योजनाओं के पते ढूँढ़ते हुए  
जहाँ रोटियों पर माँओं के दूध से  
अदृश्य अक्षरों में लिखे  
पत्र भेजे जाने वाले हैं, खेतों-कारखानों में  
ढिहाड़ी पर खटने वाले पत्तीस करोड़ मजदूरों,  
बीस करोड़ युवा बेकारों,  
उजड़े बेघरों और गिरपतार आधे आसमान  
की ओर से  
उन्हें एक दर्पण, नीले पानी की एक स्वच्छ झील,  
एक आग लगा जंगल और धरती के बेचैन गर्भ से  
उफनने को आतुर लावे की पुकार चाहिए।  
गंतव्य तक पहुँचकर  
अदृश्य अक्षर चमक उठेंगे लाल टहकदार  
और तय है कि  
लोग एक बार फिर इंसानियत की रूह में  
हरकत पैदा करने के बारे में सोचने लगेंगे।  
(शाशि प्रकाश, 'नई सदी में भगतसिंह की स्मृति' से)

शोषक-शासक जमातों के बुद्धिजीवियों, राजनीतिक प्रतिनिधियों की हमेशा ही यह कोशिश होती है कि वे जनता के महान नायकों और शहीदों की स्मृतियों को मूर्तियों-मालाओं के जरिए धिसे हुए सिक्कों में तब्दील कर दें। तथा अनुष्ठानों की चमक-दमक और शोर में उनके महान विचारों को दृष्टिओझल कर दें। क्रान्तिकारी विरासत को यदि वे विस्मृति के अंधेरे में नहीं धकेल पाते तो क्रान्तिकारियों को देवमूर्तियों में बदलकर उनके विचारों को जनता तक पहुँचने से रोकने का हर सम्भव प्रयास करते हैं। महान विचारक क्रान्तिकारी भगतसिंह और उनके साथियों के साथ यही होता रहा है। सत्ताधर्मी इतिहासकार और बुद्धिजीवी लोकमानस में महान वीर नायक के रूप में अंकित भगतसिंह की छवि को किसी भी तरह से मिटा नहीं सकते थे। इसलिए उनकी कोशिश हमेशा से यह रही है कि उनकी वीरता और गौरवशाली

शहादत की तो वन्दना की जाये, लेकिन उनके विचारों के आलोक को जनता तक नहीं पहुँचने दिया जाये।

यह इतिहास के साथ एक छल है, जो शासक वर्ग हमेशा से करता आया है। इतिहास की एकमात्र प्रासंगिकता यही हो सकती है कि वह इतिहास-निर्माण के लिए जनता को प्रेरित-प्रबोधित करे। अतीत की स्मृतियाँ भविष्य-स्वप्नों को और अधिक उद्भासित करती हैं और फिर उन्हें साकार करने वाली मुक्ति-परियोजनाएँ गढ़ने और क्रियान्वित करने के लिए जन समुदाय को प्रेरणा और ऊर्जा देती हैं। यदि ऐसा न हो तो इतिहास मात्र निर्जीव तथ्यों का मुर्दाघर होता है और स्मृतियाँ केवल और केवल अतीतजीवी बनाने का ही काम करती हैं। यही वह चीज है, जिससे आज इस देश के मुक्तिकामी युवाओं को बचना है। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को महज इसलिए याद करने की कोई जरूरत नहीं है कि उनकी शहादत का पचहत्तरवाँ वर्ष शुरू हो चुका है और अगले ही वर्ष भगतसिंह के जन्म के सौवें वर्ष की शुरुआत हो जायेगी। निस्संदेह उनकी वीरतापूर्ण कुर्बानी को देश की जनता कभी भुला नहीं सकती, लेकिन यह समय उन विचारों को एक बार फिर से याद करने का और उन संकल्पों के पुनरुज्जीवन का है जो मात्र तेईस-चौबीस वर्ष की उम्र पाये उन क्रान्तिकारियों के जीवन और शहादत के प्रेरक-स्रोत थे। यह समय इस सच्चाई को याद करने का और उससे जन-जन को अवगत कराने का है कि भगतसिंह और 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन' के उनके साथी देश को केवल बर्तानवी गुलामी की बेड़ियों से ही मुक्त नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे विदेशी पूँजी के साथ ही देश पूँजीपतियों की लूट का भी खात्मा करना चाहते थे। शासक वर्गों की दृष्टि से लिखी गयी इतिहास की जो पुस्तकें हमें पढ़ाई जाती हैं, वे हमें यह कत्तई नहीं बताती कि भगतसिंह का सपना भारत में समाजवाद की स्थापना का सपना था और उनका मानना था कि बहुसंख्यक मेहनतकश और आम जनता की वास्तविक मुक्ति केवल समाजवाद के अन्तर्गत, केवल सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के अन्तर्गत, ही सम्भव हो सकती है।

फाँसी से तीन दिन पहले भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव ने फाँसी के बजाये गोली से उड़ाने जाने की माँग करते हुए पंजाब के गवर्नर को लिखे गये अपने पत्र में लिखा था: "...हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली

व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति, अंग्रेज शासक अथवा सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के कुछ मुखियाओं पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधाएँ मिल जायें या समझौते हो जायें, उससे भी स्थिति नहीं बदल सकती।” अपने इसी पत्र में उन्होंने आगे लिखा था: “..आप जिस परिस्थिति को चाहें चुन लें, परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बहुत सम्भव है कि यह युद्ध भयानक रूप धारण कर ले। यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि समाज का वर्तमान ढाँचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक व्यवस्था में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं हो जाती और सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता। निकट भविष्य में युद्ध अन्तिम रूप में लड़ा जायेगा और तब यह निर्णायक युद्ध होगा। साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं। यही वह युद्ध है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है।”

सिर्फ इस पत्र में ही नहीं, जेल से लिखे गये अपने कई पत्रों, लेखों और कोर्ट में दिये गये बयानों में भगतसिंह ने यह स्पष्ट किया था कि वह और उनके साथी मात्र औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के लिए नहीं लड़ रहे थे, बल्कि उनकी लड़ाई हर किस्म के पूँजीवादी शोषण के खिलाफ और एक न्यायपूर्ण, समतामूलक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए जारी दीर्घकालिक महासमर की एक कड़ी थी। हमारे लिए भगतसिंह को याद करने का मतलब सिर्फ उनकी वीरता और कुर्बानी को ही नहीं बल्कि उनके लक्ष्य और विचारों को याद करना होना चाहिए। भगतसिंह और उनके साथियों की शहादत का पचहत्तरवाँ वर्ष उनके सपनों और संकल्पों की याददिलानी का वर्ष है और आँखों में घूरते इस नंगे-जलते यथार्थ से टकराने का वर्ष है कि वह लड़ाई अभी भी अपनी लक्ष्यसिद्धि तक नहीं पहुँच सकी है जिसे भगतसिंह और उनके साथियों ने अपने समय में आगे बढ़ाया था।

जनता के इंसाफपसन्द और बहादुर बेटों के लिए भगतसिंह को याद करने का बस यही एक मतलब हो सकता है और बस यही एक तरीका हो सकता है कि वे आज के समय में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष को नयी परिस्थितियों के मद्देनजर नये ढंग से और नये सिरे से संगठित करें, नयी क्रान्ति के सन्देश को कल-कारखानों और गाँवों की झोपड़ियों तक लेकर जायें (जैसा कि फाँसी की कोठरी से भगतसिंह ने नौजवानों को भेजे गये अपने सन्देश में कहा था) तथा पूँजीवाद की नयी रणनीतियों और नयी घातों को समझकर इसके विरुद्ध लम्बे और निर्णायक लड़ाई के लिए ब्यूह-रचना

करें। भगतसिंह को याद करने का एकमात्र तरीका बस यही हो सकता है कि उनके ही सन्देश को अमल में लाते हुए जड़ता और निष्क्रियता की परिस्थिति को बदलने के लिए “क्रान्ति की स्पिरिट ताजा की जाये, ताकि इंसानियत की रूह में हस्त पैदा हो।”

“कई बार हमें विचारों को कोई नाम देना होता है या कोई संकेत-चिह्न

और हम माँगते हैं इतिहास से ऐसा ही कोई नाम और उसे लोगों तक

विचार के रूप में लेकर जाते हैं।”

(शशि प्रकाश, ‘नई सदी में भगतसिंह की स्मृति’ से)

भारत की व्यापक जनता के दिलों में एक वीर बलिदानी देशभक्त क्रान्तिकारी के रूप में भगतसिंह की अमिट छवि अंकित है लेकिन जिस बुनियादी सच्चाई को हुकूमती जमातों और उनके कलमघसीट इतिहासकारों ने हमेशा ही दृष्टिओझल करने की कोशिश की है और जिससे देश के अधिकांश शिक्षित नौजवान तक भलीभाँति परिचित नहीं हैं, वह यह है कि वह एक प्रचण्ड प्रतिभाशाली और अद्भुत अध्ययनशील विचारक थे। प्रायः उनकी छवि एक क्रान्तिकारी आतंकवादी की ही बनी हुई है जो व्यक्तिगत शौर्य, बलिदान और बमों पिस्तौलों के जरिए ही क्रान्ति को अंजाम दे देना चाहता है, जबकि सच्चाई यह है कि भगतसिंह जेल जाने के पहले ही इतिहास और दर्शन का गहन अध्ययन करते हुए इस नतीजे पर पहुँचने लगे थे कि क्रान्तिकारी आतंकवाद के बजाय व्यापक मेहनतकश जनता को जागृत, गोलबन्द और संगठित करके ही क्रान्ति को सम्भव बनाया जा सकता है। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि क्रान्ति बलात् सत्ता परिवर्तन के रूप में ही सम्भव हो सकती है, लेकिन अध्ययन ने उन्हें इस ऐतिहासिक रूप से सिद्ध निष्कर्ष तक पहुँचाया कि ऐसा जन क्रान्ति के द्वारा ही किया जा सकता है और आतंकवादी कार्यवाइयों की बजाय प्रचार एवं आन्दोलनों के द्वारा जनता को संगठित करने से ही उस मुकाम तक पहुँचा जा सकता है। जेल के दिनों में गहन अध्ययन ने उन्हें वैज्ञानिक समाजवाद के उसूलों का कायल बना दिया था। निरीश्वरवादी तो वह पहले से ही थे, अब उनकी भौतिकवादी जीवन-दृष्टि और अधिक पुख्ता हो चुकी थी। फाँसी के ठीक पहले के उनके सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ ‘क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा’ (2 फरवरी, 1931) में उन्होंने गुप्त ढाँचे वाली और पेशेवर क्रान्तिकारियों (यानी पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं) के कोर ग्रुप वाली एक क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण की योजना पेश की थी, जिसके नेतृत्व में मजदूरों, किसानों छात्रों-युवाओं के व्यापक जनसंगठन व्यापक जनान्दोलन संगठित करते हुए

शासक वर्गों से राज्यसत्ता छीनने की दिशा में आगे बढ़ें। क्रान्ति के बाद वे समस्त शोषक वर्गों पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित करने की बात कर रहे थे। भगतसिंह और उनके साथियों को अपने वैचारिक चिन्तन को अमली जामा पहनाने का अवसर नहीं मिला। लेकिन उनका वैचारिक चिन्तन आज भी क्षितिज पर जलती मशाल की तरह भारत के नौजवानों के लिए प्रेरणा का एक अक्षय स्रोत है और एक कुतुबनुमा की तरह आज भी राह दिखाता है। यही कारण है कि भगतसिंह और उनके साथियों का जो भी लेखन आज उपलब्ध है (जेल जीवन के दौरान लिखी गयी भगतसिंह की चार कृतियाँ रहस्यमय ढंग से गायब हो गयीं, सिर्फ कुछ लेख, पत्र और एक जेल नोटबुक ही आज उपलब्ध हैं)। उन्हें न तो आम लोगों तक पहुँचाया जाता है और न ही इतिहास के पाठ्यक्रमों में पढ़ाया जाता है। भगतसिंह देशी शासक वर्गों के लिए भी उतने ही खतरनाक हैं जितना कि वे बर्तानवी उपनिवेशवादियों के लिए थे।

पूँजीपतियों के भाड़े के टट्टू कलमघसीट और रुग्ण मानस बुद्धिविलासी लाख कहते रहें कि पूँजीवाद ही मानव इतिहास का आखिरी मुकाम है, कि 'इतिहास का अंत' आ गया, कि समतामूलक समाज का सपना कभी साकार नहीं हो सकता, कि समाजवाद की पराजय अंतिम है; लेकिन मानव मुक्ति की हजारों वर्ष लम्बी यात्रा तबतक जारी रहेगी जबतक कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत नहीं हो जाता। अतीत में भी क्रान्तियाँ अन्तिम विजय के पहले एकाधिक बार पराजयों-विपर्ययों का सामना करती रही हैं। यही इतिहास का नियम है जो पूँजीवाद विरोधी क्रान्तियों के साथ भी घटित हो रहा है। आज भी जनता के ऐसे बहादुर बेटों की कमी नहीं है जो

भगतसिंह की इस इतिहास-दृष्टि को सही मानते हैं और जिनका दृढ़ विश्वास है कि यह शताब्दी साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध फैसलाकुन युद्ध की सदी है। यही बहादुर छात्र-नौजवान भगतसिंह और उनके साथियों की क्रान्तिकारी विरासत के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। ऐसे ही युवाओं का यह दायित्व है कि वे भगतसिंह के विचारों को पूरे देश में फैलायें, एक नयी क्रान्ति की प्रक्रिया में पहले स्वयं संगठित हों, गाँव-गाँव और शहर-शहर में अपने क्रान्तिकारी संगठन बनायें और फिर क्रान्ति का सन्देश मेहनतकश जनता तक पहुँचायें, उन्हें भाँति-भाँति के चुनावी मदारियों और दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई लड़ने वाले नकली मजदूर नेताओं के भ्रमजाल से छुटकारा दिलायें तथा संगठित होकर फैसलाकुन संघर्ष में उतरने के लिए तैयार करें।

भगतसिंह की शहादत की पचहत्तरवी वर्षगाँठ से लेकर जन्म-शताब्दी तक के तीन वर्षों का समय इस नयी शुरुआत के लिए क्या सर्वाधिक उपयुक्त समय नहीं है? यह भविष्य की पुकार सुनने का समय है। यह अतीत के गौरवशाली संघर्षों को एक बार फिर आगे बढ़ाने के लिए संकल्प लेने का समय है। निराशा और गतिरोध की कठिनतम घड़ी में ही नयी शुरुआत होती है और इतिहास नये डग भरने को उद्यत होता है।

**नये संकल्प लें फिर से, नये नारे गढ़ें फिर से**

**उठो संग्रामियों जागो,**

**नयी शुरुआत करने का समय फिर आ रहा है।**

**कि जीवन को चटख-गुलनार**

**करने का समय फिर आ रहा है।**

“धार्मिक दृष्टिकोण के आधार पर विश्व के किसी भी भाग में आन्दोलन हो सकता है। किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि इससे कोई बहुमुखी विकास होगा। जीवन हम सबको प्रिय है और हम सब जीवन की पहेलियों को अनावृत्त करने के लिए उत्सुक हैं। प्राचीन काल में विज्ञान की सीमाबद्धताओं के फलस्वरूप एक कल्पित ईश्वर के चरणों में दया की भीख माँगने के सिवा हमारे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं था, जिसे प्रकृति के रहस्यमय नियमों का नियन्ता माना गया। प्राक् वैज्ञानिक युग के मानव ने अपने को अत्यन्त असहाय महसूस किया और धर्म का आविर्भाव शायद इसी मानसिकता से हो सका। प्रकृति-सम्बन्धी विचार प्राचीन धर्मों में शायद ही सुपरिभाषित है। इसके अतिरिक्त इनकी प्रकृति आत्मनिष्ठ है, अतः ये आधुनिक युग की माँगों को पूरा नहीं कर सकते।”

**महान वैज्ञानिक डा. मेघनाद साहा  
(विज्ञान और धर्म)**



**भगतसिंह ने कहा...**

...अलग-अलग संगठन और खाने-पीने का भेदभाव हर हालत में मिटाना जरूरी है। छूत-अछूत शब्दों को जड़ से निकालना होगा।

जब तक हम अपनी तंगदिली छोड़कर एक न होंगे, तब तक हममें वास्तविक एकता नहीं हो सकती। इसलिए ऊपर लिखी बातों के अनुसार चलकर ही हम आजादी की ओर बढ़ सकते हैं। हमारी आजादी का अर्थ केवल अंग्रेजी चंगुल से छुटकारा पाने का नाम नहीं। वह पूर्ण स्वतंत्रता का नाम है जब लोग परस्पर गुलमिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से आजाद हो जाएंगे।

**(1928 में 'किरती' पत्रिका में प्रकाशित लेख  
'धर्म और हमारा स्वतंत्रता संग्राम' से)**

# अगर तुम युवा हो



शशि प्रकाश

जब तुम्हें होना है  
हमारे इस ऊर्जस्वी, सम्भावनासम्पन्न,  
लेकिन अंधेरे, अभागे देश में  
एक योद्धा शिल्पी की तरह  
और रोशनी की एक चटाई बुननी है  
और आग और पानी और फूलों और पुरातन पत्थरों से  
बच्चों का सपनाघर बनाना है,  
तुम सुस्ता रहे हो  
एक बूढ़े बरगद के नीचे  
अपने सपनों के लिए एक गहरी कब्र खोदने के बाद।

तुम्हारे पिताओं को उनके बचपन में  
नाज़िम हिकमत ने भरोसा दिलाया था  
धूप के उजले दिन देखने का,  
अपनी तेज़-रफ़्तार नावें  
चमकीले-नीले-खुले समन्दर में दौड़ाने का।  
और सचमुच हमने देखे कुछ उजले दिन  
और तेज़-रफ़्तार नावें लेकर  
समन्दर की सैर पर भी निकले।  
लेकिन वे थोड़े से उजले दिन  
बस एक बानगी थे,  
एक झलक-मात्र थे,  
भविष्य के उन दिनों की  
जो अभी दूर थे और जिन्हें तुम्हें लाना है  
और सौंपना है अपने बच्चों को।  
हमारे देखे हुए उजले दिन  
प्रतिक्रिया की काली आँधी में गुम हो गये दशकों पहले  
और अब रात के ढलढल में  
पसरा है निचाट सन्नाटा,  
बस जीवन के महावृत्तान्त के समापन की  
कामना या घोषणा करती बौद्धिक तांत्रिकों की  
आवाज़ें सुनाई दे रही हैं यहाँ-वहाँ

हम नहीं कहेंगे तुमसे  
सूर्योदय और दूरस्थ सुखों और  
सुनिश्चित विजय  
और बसन्त के उत्तेजक चुम्बनों के बारे में  
कुछ बेहद उम्मीद भरी बातें  
हम तुम्हें भविष्य के प्रति आश्वस्त नहीं  
बेचैन करना चाहते हैं।  
हम तुम्हें किसी सोये हुए गाँव की  
तंद्रिलता की याद नहीं,  
बस नायकों की स्मृतियाँ  
विचारों की विरासत  
और ढिल तोड़ देने वाली पराजय का  
बोझ सौंपना चाहते हैं  
ताकि तुम नये प्रयोगों का धीरज सँजो सको,  
आने वाली लड़ाइयों के लिए  
नये-नये व्यूह रच सको,  
ताकि तुम जल्दबाज़ योद्धा की ग़लतियाँ न करो।

बेशक थकान और उदासी भरे दिन  
आयेंगे अपनी पूरी ताक़त के साथ  
तुम पर हल्ला बोलने और  
थोड़ा जी लेने की चाहत भी  
थोड़ा और, थोड़ा और जी लेने के लिए लुभायेगी,  
लेकिन तब ज़रूर याद करना कि किस तरह  
प्यार और संगीत को जलाते रहे  
हथियारबन्द हत्यारों के गिरोह  
और किस तरह भुखमरी और युद्धों और  
पागलपन और आत्महत्याओं के बीच  
नये-नये सिद्धान्त जनमते रहे  
विवेक को ढफ़नाते हुए  
नयी-नयी सनक भरी विलासिताओं के साथ।  
याद रखना फ़िलिस्तीन और इराक़ को  
और लातिन अमेरिकी लोगों के

जीवन और जंगलों के महाविनाश को,  
याद रखना सब कुछ राख कर देने वाली आग  
और सबकुछ रातो रात बहा ले जाने वाली  
बारिश को,  
धरती में ढबे खनिजों की शक्ति को,  
गुमसुम उदास अपने देश के पहाड़ों के  
निःश्वासों को,  
ज़हर घोल दी गयी नदियों के रुदन को,  
समन्दर किनारे की नमकीन उमस को  
और प्रतीक्षारत प्यार को।

एक गीत अभी ख़त्म हुआ है,  
रो-रोकर थक चुका बच्चा अभी सोया है,  
विचारों को लगातार चलते रहना है  
और अन्ततः लोगों के अन्तस्तल तक पहुँचकर  
एक अनन्त कोलाहल रचना है  
और तब तक,  
तुम्हें स्वयं अनेकों विरूपताओं  
और अधूरेपन के साथ  
अपने हिस्से का जीवन जीना है  
मानवीय चीज़ों की अर्थवता की बहाली के लिए  
लड़ते हुए  
और एक नया सौन्दर्यशास्त्र रचना है।

तुम हो प्यार और सौन्दर्य और नैसर्गिकता की  
निष्कपट कामना,  
तुम हो स्मृतियों और स्वप्नों का द्वंद्व,  
तुम हो वीर शहीदों के जीवन के वे दिन  
जिन्हें वे जी न सके।  
इस अँधेरे, उमस भरे कारागृह में  
तुम हो उजाले की खिड़कियाँ,  
अगर तुम युवा हो!

# सत्ताधारियों का आतंकवाद

## • शिशिर

हाल में ही लंदन में आतंकवादी हमले हुए जिसमें कई लोग मारे गए। इसके बाद आतंकवादियों की धरपकड़ करने के नाम पर लंदन पुलिस ने एक बेगुनाह ब्राजीली प्रवासी नौजवान ज्यॉ चार्ल्स दि मेंजेस को मार दिया। यह नौजवान लंदन में इलेक्ट्रीशियन का काम करता था। 27 वर्षीय इस नौजवान को पुलिस ने दौड़ाया और उसे पकड़कर जमीन पर गिरा दिया। उस पर काबू पाने के बाद भी उसे गिरफ्तार करने की बजाय उसपर प्वाइण्ट ब्लैंक रेंज से ताबड़तोड़ गालियाँ चलाई जिससे वह फौरन मर गया। अगले दिन लंदन के मेट्रोपालिटन पुलिस प्रमुख ने मीडिया को बताया कि मारा गया नौजवान बेगुनाह था। उसके अगले ही दिन पुलिस प्रमुख का यह बयान भी आया कि “आतंक के विरुद्ध युद्ध” में अभी और बेगुनाह भी मारे जा सकते हैं। यह कथन काफी कुछ बताता है। इसके कुछ दिनों बाद ही कश्मीर में सुरक्षा बलों ने तीन बेगुनाह किशोरों को मार दिया। बाद में उसपर अफसोस जाहिर कर दिया गया।

पुलिस और सुरक्षा बलों द्वारा दुनिया भर में इस तरह की हत्याओं को आतंकवाद के विरुद्ध मुहिम के ‘नेसेसरी इविल’ के रूप में पेश करके उन्हें मान्य बनाया जा रहा है। दुनिया भर में जो आतंकवादी हमले हो रहे हैं वे शासक वर्गों को दमन और अपना आतंक स्थापित करने का एक बहाना मुहैया करा रहे हैं। बुश और ब्लेयर आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध का कितना भी डिंढोरा पीट लें यह बात भूली नहीं जा सकती कि यह आतंकवाद दरअसल विश्व साम्राज्यवाद की ही उपज है। साम्राज्यवादी शोषण और लूट के खिलाफ इस समय कहीं भी कारगर और संगठित प्रतिरोध आंदोलन प्रकट नहीं हो रहे हैं। हर जगह जनता की ताकतें बिखरी हुई हैं। दूसरी तरफ साम्राज्यवाद उन्हें एक कोने में धकेले जा रहा है। तेल और प्राकृतिक गैस के

लिए इराक और अफगानिस्तान को अमेरिका ने तबाह कर दिया। इराक पर अमेरिका का साम्राज्यवादी कब्जा अभी भी बरकरार है और अफगानिस्तान में उसकी कठपुतली सरकार बैठी हुई है। फिलिस्तीन में इजराइल द्वारा कत्लेआम जारी है। इसके अलावा, अमेरिका ने अपने विरोधी देशों की लोकतांत्रिक सरकार के खिलाफ एक दौर में जिस इस्लामी कट्टरपंथी आतंकवाद को पैसे और हथियारों से बढ़ावा दिया था, वह भस्मासुर साबित हो रहा है। ऐसे में दमित जनता के नौजवानों का एक हिस्सा अनिवार्य रूप से निराशा और असहायता के कारण आतंकवाद की ओर आकर्षित होता है।

पूरे विश्व में आज आतंकवाद की वजह यही है। अगर जनता साम्राज्यवादी और पूँजीवादी दमन और लूट के खिलाफ संगठित होकर उसे नेस्तनाबूद करने के प्रयासों में नहीं लगती, तब तक जनता की निराशा और सहायता के फलस्वरूप आतंकवाद पनपता रहेगा। जिस आतंकवाद को खत्म करने की बात आज दुनिया भर के साम्राज्यवादी कर रहे हैं वह बमों, पिस्तौलों और आतंक के खिलाफ सत्ताधारियों का आतंक खड़ा करके खत्म नहीं हो सकता। इससे तो वह और बढ़ेगा। अमेरिका ने जब से ‘वॉर ऑन टेरर’ शुरू किया है तब से आतंकवाद और आतंकवादी हमले और बढ़ गए हैं। अमेरिका की इराक में ऐसी-की-तैसी हो रही है। हजारों अमेरिकी सैनिक इराक में मारे जा चुके हैं।

आतंकवाद का खात्मा विश्व साम्राज्यवाद के खात्मे के साथ ही होगा क्योंकि वही आतंकवाद के पनपने की जमीन तैयार करता है। जब तक जनता की ऊर्जा क्रान्तिकारी और परिवर्तनकारी दिशा में नहीं मोड़ी जाती, तब तक आतंकवाद पनपता रहेगा और उसके खात्मे के नाम पर यह व्यवस्था बेगुनाहों के खून से अपने हाथ रंगती रहेगी।

## भगतसिंह ने कहा...



“सभी देशों को आजाद करवाने वाले वहाँ के विद्यार्थी और नौजवान ही हुआ करते हैं। क्या हिंदुस्तान के नौजवान अलग-अलग रहकर अपना और देश का अस्तित्व बचा पाएँगे? नौजवान 1919 में विद्यार्थियों पर किए गए अत्याचार भूल नहीं सकते। वे पढ़ें। जरूर पढ़ें। साथ ही पॉलिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करें और जब जरूरत हो तो मैदान में कूद पड़ें और अपना जीवन इसी काम में लगा दें। अपने प्राणों का इसी में उत्सर्ग कर दें। वरना बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता।”

(‘विद्यार्थी और राजनीति’ जून 1928 में ‘किरती’ पत्रिका में प्रकाशित लेख)

# अमेरिकी फ़ाउण्डेशन : मुखौटों के पीछे का सच

अक्सर, शक्ति और प्रभाव के स्रोतों की अदृश्यता ही उसके प्रभावशाली होने का सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण होती है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही, अमेरिका में धनिकों द्वारा कई फ़ाउण्डेशन स्थापित होने लगे थेम्पेई, रॉकफ़ेलर, कारनेगी और बिल गेट्स फ़ाउण्डेशन इनके कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। अमेरिका की राजनीति विज्ञानी जोन रोयलोव्स के एक नए अध्ययन (फ़ाउण्डेशन एण्ड पब्लिक पॉलिसी: दी मास्क ऑफ़ प्लुरलिज्म, स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ़ न्यूयॉर्क प्रेस, 2003) में अमेरिकी फ़ाउण्डेशनों के क्रियाकलापों की एक रूपरेखा और उनकी भूमिका की समीक्षा की गई है।

उनके हस्तक्षेपों का दायरा काफी व्यापक है (जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कार्य, मीडिया, कला और संस्कृति, शोध, और सामाजिक आन्दोलन शामिल हैं); कई मामलों में उनकी भूमिका निर्णायक है। बावजूद इसके राजनीति विज्ञानियों और समाजशास्त्रियों ने इस विषय पर कम लिखा है। रोयलोव्स लिखती हैं कि पिछले बीस वर्षों से वह “अन्य राजनीति विज्ञानियों को इस बात पर सहमत करने का प्रयास करती रही हैं कि राजनीतिक विश्व के किसी भी ब्योरे को फ़ाउण्डेशनों के क्रियाकलापों और उनके अनुदान भोगियों की गतिविधियों को समझना होगा”, लेकिन उन्हें ज्यादा सफलता नहीं मिली। ‘ये अत्यन्त प्रभावशाली संस्थाएँ हैं, फिर भी, अधिकांश शोधकर्ताओं और स्वयं फ़ाउण्डेशनों द्वारा उनकी शक्ति को कम करके आँका जाता है। ‘द्वारपालकों’ और अनुदानदाताओं की अपनी भूमिका के द्वारा वे अपनी और अपने द्वारा प्रायोजित संगठनों की आलोचना को हतोत्साहित करते हैं और आलोचनात्मक अध्ययनों को हाशिये पर धकेल देते हैं।

रोयलोव्स यह तर्क देती हैं कि सत्ता वर्ग के सामाजिक और राजनीतिक प्रभुत्व को कायम रखने में फ़ाउण्डेशनों का महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि सत्ता वर्ग मात्र बन्दूक और कानून द्वारा ही शासन नहीं करता। उल्टे उन्हें तो इस बात की आवश्यकता होती है कि शासन करने के लिए उन्हें निरंतर बलप्रयोग की शरण न लेनी पड़े। इसलिए वह दलील देती हैं कि, वे कई किस्म के संस्थाओं, गतिविधियों और व्यक्तियों (जो अक्सर स्वयं शासक वर्ग के सदस्य नहीं होते) के जरिए शासित जनता की सहमति का निर्माण करते हैं, वे शासक वर्ग की विचारधारा का प्रसार इस तरह करते हैं जैसे कि यह एक सामान्य बोध की बात हो। एक ओर सत्ता वर्ग के विचारों से असंतोष को “अतिवाद” करार दिया जाता है और उसकी उपेक्षा की जाती है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति के असंतोष का स्वागत किया जाता है और उसे रूपान्तरित कर

दिया जाता है। वास्तव में, अगर सत्ता वर्ग का प्रभुत्व रूढ़ और संकीर्ण न हो तो वह ज्यादा टिकाऊ होता है, बल्कि वह उभरते रुझानों को जल्द से जल्द अपने में समाहित कर लेने में सक्षम होता है।

इस प्रक्रिया को न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लागू करने का प्रयास किया जा रहा है। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार और अब भी अमेरिकी सुरक्षा व्यवस्था की एक अहम शक्तिशाली ज़िम्मेदार ब्रेजेन्कि ने स्वयं यह दावा किया है:

“अमेरिकी विश्व शक्ति के सांस्कृतिक प्रभुत्व के पहलू को सही ढंग से समझा नहीं गया है... जैसे-जैसे अमेरिकी तौर-तरीकों का प्रसार धीरे-धीरे पूरे विश्व में हो रहा है, वैसे-वैसे अप्रत्यक्ष और सहमति से प्रतीत होने वाले अमेरिकी प्रभुत्व को लागू करने के लिए ज्यादा से ज्यादा अनुकूल स्थितियाँ तैयार हो रही हैं। और जैसा कि अमेरिकी घरेलू व्यवस्था के मामले में देखा जा सकता है, इस प्रभुत्व में परस्पर गुंथी संस्थाओं और प्रक्रियाओं की जटिल संरचना शामिल है, जिसकी रूपरेखा आम सहमति पैदा करने और सत्ता और उसके प्रभाव के बीच अस्पष्ट असमरूपताएँ पैदा करने के लिए तैयार की जाती है।” (जोर हमारा)

अमेरिकी फ़ाउण्डेशनों के कार्यकलापों के राजनीतिक महत्त्व के अध्ययन का लाभ भारत के लोगों के लिए बिल्कुल जाहिर है, क्योंकि यहाँ गैर-सरकारी संस्थाओं और अकादमिकों को विदेशी संस्थाओं के अनुदान अब व्यापक हो गए हैं। हाल ही में, मुम्बई में हुए वर्ल्ड सोशल फोरम को दिए गए अनुदान को लेकर उत्पन्न विवाद ने इस विषय को केन्द्र में ला दिया है।

## अमेरिकी फ़ाउण्डेशन: आरम्भ, आकार, लक्ष्य

बीसवीं सदी के आरम्भ से ही अमेरिका में फ़ाउण्डेशनों की स्थापना हो रही है। समाजवाद की चुनौती के समक्ष, आरम्भिक उद्देश्यों में यह दिखाने की आकांक्षा थी कि पूँजीवाद भी व्यापकतम ‘सार्वजनिक हित’ को बढ़ावा देने में समर्थ है। वर्तमान पूँजीपति के पास वह सौहार्द्र मुखड़ा नहीं है। 1892 में कार्नेगी ने होम्सटेट में अपने मजदूरों पर हथियारबंद हमला करवाया, जिसमें 16 लोगों की मौत हो गई। अपनी एक खान पर मजदूरों और उनके 8 परिवारों के लुडलो हत्याकाण्ड (33 मरे, 100 घायल) से 1914 में रॉकफ़ेलर की राष्ट्रव्यापी बदनामी हुई। कार्नेगी ने 1911 और रॉकफ़ेलर ने 1913 में अपने-अपने फ़ाउण्डेशनों की स्थापना की। राज्य स्तर पर फोर्ड फ़ाउण्डेशन की स्थापना 1936 में हुई। यह

वही दौर था जब फोर्ड मोटर कम्पनी समेत हर जगह मजदूरों के संगठित होने की लहर चरम सीमा पर थी। कम्युनिज़्म के द्वितीय युद्धोत्तर तीव्र प्रसार (जिसमें सबसे चौकाने वाला चीन का 'पतन' था) के साथ "कम्युनिज़्म की चुनौतियों का सामना करने के लिए जनतंत्र को सहायता देने के लिए" फोर्ड फाउण्डेशन बनाया गया।

इस "थर्ड सेक्टर" यानी जो न तो सरकारी है और न ही मुनाफे के लिए किया जाने वाला व्यवसाय हैके कार्यकलाप अमेरिकी अर्थव्यवस्था में पर्याप्त मात्रा में हैं। 1998 में, अमेरिका में 12.3 लाख 'स्वतंत्र सेक्टर' के संगठन थे (जिसमें प्रमुख तौर पर अस्पताल और विश्वविद्यालय शामिल थे)। 1997 में "स्वतंत्र सेक्टर" की आय 665 अरब डालर थी और उसके 110 लाख कर्मचारी थे। रोयलोव्स के अनुसार यह "थर्ड सेक्टर" पूँजीवाद को कई तरीकों से एक सुरक्षा कवच प्रदान करता है: ये बिना मुनाफे वाले संगठन औद्योगिक हास से उत्पन्न आर्थिक मंदी को कम करते हैं; ये ऐसे कुछ माल और सेवा (बेघर लोगों को आश्रय देने से लेकर उन्नत संस्कृति तक) प्रदान करते हैं, जिसे बाजार नहीं दे सकता; इस तरह ये पूँजीवाद की फटी चादर में पैबन्द लगाने में मदद करते हैं; ये अव्यवस्था फैलाने वाले और पार्थक्य में जी रहे लोगों को, जो अन्यथा व्यवस्था के लिए संकट बन सकते हैं, अक्सर ऐसे रोचक कार्य प्रदान कर आत्मसात कर लेते हैं, जिसमें सामाजिक उद्देश्य का भाव हो; ये जनान्दोलनों को अल्पसंख्यकों के कई अलग-अलग 'पहचानों' के आन्दोलनों (यहाँ तक की गरीब भी अल्पसंख्यक ठहराए जाते हैं), शिक्षा-सम्बन्धी कार्यकलापों और मुकदमेबाजी पर केन्द्रित आन्दोलनों में विभाजित करने में मदद करते हैं; और अन्ततः, ये 'विघ्नकारी' या क्रान्तिकारी आन्दोलनों को कुचलने के लिए कभी-कभार उपस्थित सत्ताधारी वर्ग के ढाँचे के अन्दर ही राजनीतिक परिवर्तन को भी बढ़ावा देते हैं।

हालाँकि 'थर्ड सेक्टर' की आय का मात्र 20 प्रतिशत ही अनुदानों से आता है, लेकिन रोयलोव्स दलील देती हैं कि फाउण्डेशन ही इसके योजना बनाने वाले और तालमेल करने वाले हाथ हैं। अमेरिका में अनुदान देने वाले 50,000 फाउण्डेशनों के पास 450 अरब डॉलर की सम्पत्ति है और वर्ष 2000 में उन्होंने 27.6 अरब डॉलर शिक्षा, स्वास्थ्य, मानवीय सेवाओं, कला, संस्कृति पर व्यय किया (जिसमें नागरिक अधिकार और सामाजिक कार्य, समुदाय सुधार, लोकोपकार और स्वयंसेविता और सार्वजनिक मामले भी शामिल हैं)। गेट फाउण्डेशन (21 अरब डॉलर), लिली एंडोवमेंट (16 अरब डॉलर) और फोर्ड फाउण्डेशन (15 अरब डॉलर) सबसे ज्यादा सम्पत्ति वाले फाउण्डेशनों में से हैं।

## विचारधारा और सूचना

अकादमिक विश्व: फाउण्डेशन विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों, सांस्कृतिक संस्थानों, मीडिया और बुद्धिजीवियों के माध्यम से अपनी विचारधारा को प्रोत्साहित करते हैं। 1949 में फोर्ड का एक राष्ट्रीय फाउण्डेशन के रूप में उदय, फाउण्डेशनों और सामाजिक विज्ञान के बीच गहरे सहयोग का अग्रदूत बना। रोयलोव्स दावा करती हैं कि "(अमेरिका में) आधुनिक समाज विज्ञान शोध लगभग पूरी तरह से फाउण्डेशनों से अनुदान प्राप्त हैं।" इनसे फण्ड लेने वाले क्षेत्रों में उच्च शिक्षा, शोध, अनुदान, इन्टरनेट, फेलोशिप,

फेलोशिप, व्यवसायिक संगठनों को सहयोग, विद्वतापूर्ण लेख, जर्नल, गंभीर पत्रिकाएँ, इन्टरनेट डेटाबेस, पब्लिक रेडियो और टेलीविजन, चिंतक और निजी संस्थाएँ शामिल हैं। ये सबकुछ असंख्य माध्यमों से रिस-रिस कर बाकी जनता तक पहुँचता हैं। मसलन, फाउण्डेशन समर्थित बुद्धिजीवी किताबें लिखते हैं (जिनमें अमेरिकी अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र के कई अग्रतम रचनाएँ शामिल हैं) और रिपोर्ट बनाते हैं; रेडियो, टेलिविजन, और प्रिन्ट मीडिया के लिए समालोचक उपलब्ध कराते हैं, सम्मेलन आयोजित कराते हैं और योजना को जन्म देते हैं।

इस उद्देश्य के लिए समूचे अकादमिक विषयों को ही पुनर्गठित कर दिया गया है। फोर्ड ने राजनीति विज्ञान की शाखा को आचरणगत दिशा में मोड़ने में सहायता कीजो वर्ग और उनके हितों जैसी उन परिघटनाओं, जो प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षण योग्य नहीं हैं, से अलग प्रेक्षण योग्य मानव राजनीतिक व्यवहार का एक 'वैज्ञानिक' अध्ययन है। अलग समझ रखने वाले पारम्परिक या मार्क्सवादी राजनीतिक शास्त्रियों को किनारे लगाते हुए 1951 से 1957 के बीच फोर्ड के बिहेवियरल साइन्स डिवीजन ने 230 लाख डालर खर्च किए। 1950 और 1960 के दशकों में "अमेरिकी लोकोपकारी संस्थाओं द्वारा राजनीति विज्ञान को दी गई राशि का नब्बे प्रतिशत फोर्ड के पूरे ताने-बाने ने दिया था"। रोयलोव्स विशिष्ट उदाहरण देकर बताती हैं कि किस प्रकार अकादमिक यह सीख गए कि समुदाय में स्वीकृत कैसे होना है और लगातार शोध अनुदान भी कैसे प्राप्त करते रहना है।

अतर्न्नाष्ट्रीय विषयों के अध्ययन में, काउंसिल ऑन फॉरेन रिलेशंस (सीएफआर) का प्रमुख स्थान है। आरम्भ में रॉकफेलर और कार्नेगी इसे फण्ड देते थे और अब फोर्ड भी इसे फण्ड देता है। यह विदेश नीति सम्बन्धी अकादमिकों, सरकारी अफसरों, व्यवसाय प्रबंधकों, मजदूर नेता और पत्रकारों के बीच एकता कराता है। इसका संबंध केंद्रीय खूफिया एजेंसी (सी.आई.ए) से भी है। रैण्ड कारपोरेशन (रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट कॉरपोरेशन) का गठन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा प्राप्त अनुदान से हुआ था। इसने अपना दायरा अमेरिका की हवाई सेना के लिए शस्त्र अनुसंधान से युद्धनीति सम्बन्धी सभी सवालों तक विस्तारित कर लिया है।

फाउण्डेशनों की सलाह पर हार्वर्ड, कोलम्बिया, एमआईटी, और अन्य विश्वविद्यालयों द्वारा स्थापित केन्द्रों/संस्थाओं में अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की पढ़ाई कर रहे विद्यार्थियों से भी सीआईए निकटतम सम्बन्ध बनाए रखती है। वे केन्द्र/संस्थाएँ जो अमेरिकी सरकार के सुर से सुर नहीं मिलते उन्हें फाउण्डेशनों के फण्ड से भी वंचित कर दिया जाता है: स्वतंत्र और काफी सम्मानित स्टैनफोर्ड के हिस्पैनिक-अमेरिकन और लूसो-ब्राजीलियन स्टडीज को फोर्ड से फण्ड लेने के लिए बर्बाद कर दिया गया।

फाउण्डेशनों की पहुँच वैश्विक है। न केवल तीसरी दुनिया के भावी नेता फाउण्डेशनों द्वारा पोषित फेलोशिप के साथ अमेरिकी विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण पाते हैं, बल्कि फाउण्डेशन विश्व भर के विश्वविद्यालयों के समाजविज्ञान विभाग को सहयोग देते हैं। 1961 में फोर्ड ने कांगो में नेशनल स्कूल ऑफ लॉ एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना की। 1968 तक इस विद्यालय से 400 ऐसे स्नातक निकले जो कि प्रशासन और न्यायालयों के

महत्वपूर्ण पदों पर विराजमान नागरिक सेवकों का एक कुलीन तबका बन गए।

1919 से 1940 के बीच, ब्रिटेन में “समाज विज्ञान को प्राप्त मदद का मुख्य आधार” रॉकफेलर से आने वाला फण्ड था (लगभग 50 लाख डॉलर)। लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स और लंदन, जेनेवा, पेरिस, बर्लिन, कोपेनहेगेन, स्टॉकहोम, ओस्लो, नीदरलैंड आदि के अन्य संगठन इसमें शामिल हैं। “1950 के दशक तक विश्व के अधिकांश हिस्सों में राजनीति विज्ञान का अमेरिकीकरण विधिवत ढंग से आरम्भ हो चुका था।”

**पहचान की राजनीति:** मेहनतकश और दबे-कुचले लोगों की एकता की खिलाफत करने वाली विचारधाराओं को प्रोत्साहित किया जाता है। 1960 के दशक के आखिरी वर्षों में आबादी के कई उत्पीड़ित हिस्सों के व्यवस्था विरोधी संगठनों की आपसी एकता ने अमेरिकी सत्ता वर्ग के लिए खासी मुश्किलें पैदा कीं (मसलन, न्यू मेक्सिको का एक जुझारू चिकानो संगठन ब्लैक बेरेट्स, ब्लैक पैन्थर्स, यंग लॉर्ड्स और अमेरिकन इण्डियन मूवमेंट से जुड़ने के साथ क्यूबा से भी एकता प्रकट करने लगा था)। इस तरह फाउण्डेशनों की मदद की बदौलत, सामाजिक रूप से उत्पीड़ित हर हिस्से की एक अलग ‘पहचान की राजनीति’ की शुरुआत हुई। 1970 में इसकी शुरुआत करते हुए फोर्ड ने नारी सम्बन्धी मुद्दों के अध्ययन को भी फण्ड देना आरम्भ कर दिया, जो आज फोर्ड के लिए एक विशाल क्षेत्र बन गया है।

अगर अलग-अलग समूहों की ‘पहचान की राजनीति’ को सभी उत्पीड़ितों की मुक्ति की व्यापक योजना से काट दिया जाए तो वह सत्ता वर्ग को अच्छी सेवा पहुंचा सकती है। उदाहरण के लिए, उस अमेरिकी साम्राज्यवाद को बनाए रखने के लिए, जिसमें अलग-अलग देशों में औरतों और उत्पीड़ितों की हत्या भी शामिल है, अमेरिकी सेना औरतों और अल्पसंख्यकों को ज्यादा से ज्यादा अवसर प्रदान कर रही है। विभाजनकारी प्रभाव से आगे, फाउण्डेशन की पहलकदमी ने उग्र आन्दोलनों को पेशेवरों के नेतृत्व वाले अकादमिक या नौकरशाही संगठनों में बदलने में मदद की है।

**चिन्तक और मीडिया:** मतभेद के दोनों पहलुओं को फण्ड दे कर, फाउण्डेशन यह सुनिश्चित कर देता है कि विवाद सत्ता वर्ग के दायरे में ही रहे। ब्रूकिंग्स इन्स्टीट्यूट प्रमुख ‘उदारवादी’ बौद्धिक तोप माना जाता है और अमेरिकन एन्टरप्राइज इन्स्टीट्यूट प्रमुख ‘दक्षिणपंथी’ बौद्धिक तोप माना जाता है। और दोनों ही फोर्ड से अनुदान प्राप्त करते हैं। 1986 से फाउण्डेशनों (जिसमें फोर्ड भी शामिल है) द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त इकोनॉमिक पॉलिसी इन्स्टीट्यूट लेबर यूनियनों को रिसर्च इनपुट्स प्रदान कर रहा है, जिससे उन्हें कई तरह से मदद मिलती है, मसलन, इससे उत्तर अमेरिका मुक्त व्यापार समझौते (नाफ्टा) का विरोध करने में इन यूनियनों को मदद मिलती है। लेकिन इसके साथ ही फोर्ड अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की नाफ्टा समर्थक संस्था और नाफ्टा समर्थक मंच को भी फण्ड देता है (जिसमें 100 लातिन संगठनों

और चुने हुए अधिकारियों का एक गठबंधन भी शामिल है)।

मीडिया इस श्रृंखला की आगे की कड़ी है। वामपंथी से लेकर दक्षिणपंथी पत्रिकाओं तक की एक पूरी कतार (जिसमें *दी नेशन*, *मदर जोन्स*, *दी प्रोग्रेसिव* और *इन दीज यइम्स* शामिल हैं) फाउण्डेशनों से फण्ड प्राप्त करते हैं। और इसी तरह वैकल्पिक पत्रकारिता संस्थान, जन प्रसारण, डेटाबेस, वैकल्पिक ऑन-लाइन समाचार सेवाएँ, जैसे वनवर्ल्ड नेटवर्क, को भी फण्ड प्राप्त हुए हैं।

फाउण्डेशन न केवल व्यवस्था को देखने के नजरिये को आकार देता है, बल्कि उसकी चादर के शर्मनाक छेदों पर पैबंद भी लगा देता है। राज्य और स्थानीय सरकार को दिए दान ने कई क्षेत्रों में सुधार लाने में मदद की है। रोयलोव्स कहती हैं कि “यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि शिक्षा में (निजी साथ ही साथ सार्वजनिक) हुए लगभग सभी आविष्कारों के स्रोत फाउण्डेशन ही रहे हैं। कलात्मक और सांस्कृतिक क्रियाकलापों को दिए गए फण्डों ने एक ऐसी समृद्धि सुनिश्चित कर दी है जो बाजार अकेले

नहीं कर पाता, और इस तरह कलाकार, लेखक और संगीतकारों को खतरनाक राजनीति से दूर रखा जाता है। (फ्रांसेस स्टोनर सॉन्डर्स के *हू पेड दी पाइपर? दी सी. आई.ए. एण्ड दी कलचरल कोल्ड वॉर* में सी. आई.ए. द्वारा इस सन्दर्भ में फाउण्डेशनों के इस्तेमाल का विस्तृत अध्ययन है।)

कुछ सांस्कृतिक फण्डों का प्रवाह विदेशों की ओर भी होता है, जिनके परिणामों का अनुमान लगाया जा सकता है। 1960 के दशक में फिलिपाइन शैक्षणिक रंगमंच संस्था (पेटा) का गठन हुआ, यह अमेरिका द्वारा फिलिपाइन्स के शोषण की छानबीन करने वाले नाटकों का मंचन करता था।

फोर्ड के फण्ड के साथ “पेटा जो स्वयं को ‘विरोध का रंगमंच’ कहता था, अब ‘सशक्तीकरण के रंगमंच’ में बदल गया है, ठीक उसी तरह से पेटा के स्त्री रंगमंच कार्यक्रम का भी विकास हुआ है”। अब बताया जाता है कि यह स्त्री-विरोधी घरेलू हिंसा और प्रजनन सम्बन्धी स्वास्थ्य पर बने नाटकों के साथ पूरे देश में भ्रमण करते हैं, यानी ऐसे विषयों पर बने नाटक जो स्वयं फिलिपाइन्स या अमेरिकी सत्ता वर्ग के लिए चिन्तनीय नहीं है।

### सामाजिक आन्दोलनों में फाउण्डेशनों का हस्तक्षेप

व्यापक जनान्दोलनों की जगह फाउण्डेशन याचिकाओं का समर्थन करता है। याचिकाओं में जनान्दोलनों का समावेश नहीं होता; यह कार्यकर्ताओं के लिए एक सुरक्षित, रूढ़िवादी आउटलेट है। रोयलोव्स दावा करती हैं कि “पूरी तरह फाउण्डेशनों द्वारा निर्मित जनहित कानूनों ने उच्चतम न्यायालय के एजेण्डे को आकार देने में मदद की है”। फोर्ड फाउण्डेशन के अनुसार इसके लक्ष्य हैं “रचनात्मक तरीकों से अनिवार्य सामाजिक परिवर्तनों को आगे बढ़ाना। यह कानून यह दिखाने की चेष्टा करता है कि वर्ग और सामान्य हित को प्रभावित करने वाली कानूनी कार्रवाइयों में कम प्रतिनिधित्व वालों का प्रतिनिधित्व युक्तिसंगत भी है और

सामाजिक रूप से उपयोगी भी...और साथ ही यह दिखलाने की चेष्टा करता है कि नई न्यायसंगत शिकायतों से निपटने के लिए परम्परागत क्रियाविधि को फिर से आरम्भ करने से, कानूनी प्रक्रिया में जनता का विश्वास सुदृढ़ होगा।

रंगभेद के आधार पर शोषण के खिलाफ होने वाला आन्दोलन अमेरिका के सबसे महत्वपूर्ण जनान्दोलनों में से एक था। 1920 और 1940 के दशकों के बीच अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी (CPUSA) ने कठिन परिस्थितियों और दमन के बावजूद रंग के आधार पर भेदभाव के प्रश्न को उठाया। परिणामस्वरूप सत्ता को आतंकित करते हुए इसने विश्वसनीय अश्वेत समर्थन जीता। प्रत्यक्ष जवाबी कार्रवाई के तहत, अश्वेत जनता के विकास के लिए राष्ट्रीय अश्वेत जनता प्रगति संघ (NAACP) जिसकी अश्वेत जुझारूपन को रोकने में लम्बे समय तक महत्वपूर्ण भूमिका रही थी 1950 के दशक में फोर्ड के फण्ड ग्रहण करता था और नाक्य-कानूनी रक्षा निधि (LDEF) का गठन किया गया।

बाद में, 1950 के दशक में, जैसे ही अश्वेत और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों में एक विद्रोह शुरू हुआ, वैसे ही फाउण्डेशनों ने जनहित याचिका संगठनों की संख्या को कई गुना बढ़ा दिया: रोयलोव्स 1967 और 1975 के बीच के ऐसे 23 संगठनों की सूची दिखाती हैं जो फोर्ड द्वारा निर्मित थे या पूर्ण रूप से उसके द्वारा पोषित थे। अकेले 1970 में फाउण्डेशनों ने 156 लाख डॉलर उचित प्रकार के अश्वेत लोगों के संगठनों को दिए। आरम्भ में सदरन क्रिश्चियन लीडरशिप कॉन्फ्रेंस फण्ड प्राप्त करता था, लेकिन जब मार्टिन लूथर किंग ने ज्यादा उग्र रास्ता अपनाया और सभी गरीबों (अश्वेत और श्वेत) के सामान्य हित पर बल दिया, साथ ही वियतनाम युद्ध का विरोध किया, तब कॉन्फ्रेंस को फण्ड मिलना कम होने लगा था। उनकी हत्या के बाद, फाउण्डेशनों और कॉरपोरेट के फण्डों के साथ अटलान्टा में स्थापित मार्टिन लूथर किंग सेंटर फॉर नॉन वॉयलेन्ट चेन्ज (अहिंसक सामाजिक परिवर्तन के लिए मार्टिन लूथर किंग केन्द्र) ने उनकी यादों का पूरी तरह से सफ़रा कर दिया।

अमेरिकी सत्ताधारी वर्ग 'अश्वेत शक्ति' के नारों से आतंकित था जिसका पहली बार इस्तेमाल 1960 के दशक में छात्र अहिंसक समन्वय समिति (स्टूडेन्ट नॉन-वायलेन्ट कोऑर्डिनेटिंग कमेटी) ने किया था। फोर्ड और रॉकफेलर ने जवाबी कार्रवाई में 'अश्वेत जनता की शक्ति' को 'अश्वेत जनता के पूँजीवाद' में बदलने के लिए राष्ट्रीय शहरी गठबंधन (NUC) का निर्माण किया। नस्ली समानता कांग्रेस (CORE) के रॉय इनिस को फोर्ड फाउण्डेशन का फेलो चुना गया, और वह राष्ट्रीय शहरी गठबंधन के बोर्ड का सदस्य बना। पिछड़े क्षेत्रों में लघु व्यवसाय और उद्योगों की स्थापना के लिए NUC और CORE समुदाय विकास कारपोरेशनों को सहायता देते थे। न्यूयॉर्क में बेडफोर्ड-स्टूडेन्ट ने उग्रपंथी रैडिकल मोबिलाइजेशन फॉर यूथ, समुदायिक कार्रवाई आन्दोलन और 1964 में पुलिस उत्पीड़न के खिलाफ विद्रोह देखा। बेडफोर्ड स्टूडेन्ट पुनर्स्थापना कॉरपोरेशन (BSRC) के रूप में फोर्ड फाउण्डेशन का जवाब आया जिसने उस क्षेत्र में लघु व्यवसायों को बढ़ावा दिया। इस कारपोरेशन का निदेशक फ्रैंकलिन थॉमस, बाद में फोर्ड फाउण्डेशन का प्रथम अश्वेत अध्यक्ष बना। कॉरपोरेशन और फाउण्डेशन समुदाय विकास निगमों में लाखों का निवेश

करते हैं, जिन्होंने वंचित समुदाय के तुष्टिकरण और मध्यमार्गी नेतृत्व के विकास में योगदान दिया है। फिर भी वे असफल रहे हैं तक कि तेजी के समय भी वे दीर्घकालिक गरीबी को रूटी-भर भी कम नहीं कर सके।

1952 में फोर्ड ने फण्ड फॉर रिपब्लिक की स्थापना की, जिसने मैकार्थी काल के काले दिनों में नागरिक स्वतंत्रता के लिए मुकदमे लड़े। लेकिन इन मुकदमों में जीत 1954 के बाद मिली, जिस समय तक अमेरिकी कम्युनिस्ट पार्टी और प्रोग्रेसिव पार्टी को पूरी तरह से कुचल दिया गया था। जब फोर्ड फाउण्डेशन नागरिक स्वतंत्रता के कामों को फण्ड दे रहा था, उस समय भी इसने सीआईए को सलाह दी कि खुफिया कार्रवाइयों में यह न्यूयॉर्क सिटी और अन्य पुलिस विभागों के साथ मिल कर काम करे।

रोयलोव्स बताती हैं कि जनहित याचिकाओं के वास्तविक सामाजिक लाभ को ज्यादा से ज्यादा संदिग्ध ही कहा जा सकता है, और यह कि अमेरिका में कैद की सजाओं की दर सबसे ज्यादा है, जेल की परिस्थितियाँ दयनीय है और मृत्युदण्ड का उदारता से प्रयोग किया जाता है। लेकिन, फाउण्डेशन का एक उद्देश्य, जो असन्तोष की प्रचण्ड बाढ़ को अहिंसक पानी में बदलने का है, कारगर होता प्रतीत होता है। विरोध करने वालों और उग्र नेताओं की ऊर्जा अधिकारों के लिए किये गए मुकदमा अभियानों में खर्च हो गई। एक प्रख्यात कानूनविद्, आर्थर एस. मिलर का दावा है कि यह न्यायिक सक्रियता का ही एक काम है कि: 'वह असन्तोष को रोक कर इसे अहिंसक रूपों में बदल कर, न्यायालय को इस काम में सक्षम बनाता है कि वह खतरनाक सामाजिक अव्यवस्था को शांत करने के लिए न्यूनातिन्यून आवश्यक मुद्दों पर छूट देकर सत्ताधारी वर्ग को शीर्ष पर बने रहने में मदद करे'।

जैसे ही कई मुद्दों पर स्वतंत्र संगठन पनपने लगे जैसेसेन्ट्रल अमेरिकन सोलिडैरिटी समूह, युद्ध विरोधी समूह, अल्पसंख्यक समूहवैसे ही फाउण्डेशनों ने इनके समानान्तर संगठनों को प्रायोजित करना शुरू किया, जैसेअमेरिकन वॉच; शांति समूह (1984 से शांति आन्दोलनों की आय के एक तिहाई का योगदान फाउण्डेशनों ने करना शुरू कर दिया था); 'टिकाऊ विकास' संगठन; विभिन्न अल्पसंख्यकों के लिए कानूनी रक्षा फण्ड। 1969 में फोर्ड फाउण्डेशन के तत्कालीन अध्यक्ष मैकजॉर्ज बण्डी से फाउण्डेशनों पर कांग्रेस की सुनवाई में पूछा गया कि फोर्ड 'उग्र' संगठनों की सहायता क्यों कर रहा है? इस पर उन्होंने जवाब दिया:

"यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह है कि फोर्ड फाउण्डेशन उन संस्थाओं और संगठनों के विकास को, जो अभी नए हैं और जिनकी दिशा अभी निर्धारित नहीं हुई है, इस हद बदल सकता है कि जब भी उनके पास कोई जिम्मेदार और रचनात्मक प्रस्ताव हो, तो वे उसके लिए समर्थन पा सकें। अगर उनको ऐसा समर्थन प्राप्त नहीं होता है तो संगठन में जो लोग तोड़-फोड़, असहमति और यहाँ तक कि हिंसा की ओर आकर्षित हो सकते हैं, उनका यह विश्वास और दृढ़ हो जाएगा कि अमेरिकी समाज उनकी जरूरतों की कोई परवाह नहीं करता। लेकिन उन्होंने अगर कोई अच्छा प्रोजेक्ट रचनात्मक ढंग से हमारे सामने रखा है, और वे इसे जिम्मेदारी के साथ चलाते हैं और उन्हें इसके लिए सहायता मिलती है और वह कारगर साबित होता है, तो उन लोगों को

प्रोत्साहित किया जा सकता है जो सोचते हैं कि इस प्रकार गतिविधियों से लाभ होता है।”

## अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियाँ

1998 में अमेरिकी संगठनों ने सिर्फ 1.6 अरब डॉलर अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों पर खर्च किया, जिनमें से अधिकांश मित्रतापूर्ण स्वयंसेवी संगठनों की सहायता में खर्च किए गए। यह राशि तुच्छ लग सकती है। लेकिन इस राशि के साथ अमेरिकी सरकार के नेशनल एन्डोवमेंट फॉर डेमोक्रेसी, एजेन्सी फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट और अन्य गुप्त स्रोतों से आने वाले फण्ड के अतिरिक्त दूसरे साम्राज्यवादी देशों से आने वाले फण्ड भी मिलते हैं। सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक तो हस्तक्षेपों का वह विशाल दायरा है जो इस तुच्छ राशि से सम्भव हो जाता है: अधिक गरीब देशों में काफी कम खर्च में प्रभाव कायम किया जा सकता है।

कुछ प्रमुखतम अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, जैसे ह्यूमन राइट वॉच (अपने सम्बन्धित संगठनों अमेरिकाज वॉच, एशिया वॉच और समान संगठनों समेत) फण्डों से फण्ड प्राप्त करते हैं। ऐसे ही फण्ड कई 'वैकल्पिक' शिखर बैठकों को मिलते हैं, जैसे कि 'ग्लोबल फोरम'। यह रियों में संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण और विकास पर होने वाले सम्मेलन, दी अदर इकोनॉमिक सम्मिट (TOES) और जी-7 (अमीरतम देशों की वार्षिक बैठक) का सहायक है। इस सूची में जो नया नाम जुड़ा है, वह है वर्ल्ड सोशल फोरम।

अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाहियों में सीआईए फण्डों के संगठनों को एक 'जरिए' की तरह इस्तेमाल करता है। कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम ऐसा ही एक प्रसिद्ध मामला था, जिसका मकसद मार्क्सवाद को अविश्वसनीय सिद्ध करने की कोशिश करना था, खासकर यूरोपीय बुद्धिजीवियों के बीच। 1967 में, जब ये लेन-देन सार्वजनिक हो गए तो आक्रोश का एक छोटा-सा दौर चला:

“प्रेस रिपोर्ट संकेत करती हैं कि शायद कुछ विशेष संगठनों को फण्ड देने के लिए सीआईए ने कम-से-कम 46 संगठनों का एक प्रचलित तरीके के रूप में इस्तेमाल किया। 'ट्रिपल पास' के नाम से जानी जाने वाली एक प्रणाली के तहत एक सामान्य प्रक्रिया में सीआईए स्वयं द्वारा स्थापित 'दिखावटी' फण्डों को फण्ड पहुँचाता था जो उसकी गतिविधियों के मुखौटे के रूप में काम करते थे। फिर ये 'दिखावटी' फण्डों को वास्तविक फण्डों को अनुदान देते थे। इसके बाद ये असली फण्डों को भी सम्भालते थे। सीआईए द्वारा निर्दिष्ट संगठनों को अनुदान देते थे, और इसके लिए 'दिखावटी' फण्डों से प्राप्त फण्ड का उपयोग करते थे। हालाँकि कुछ उदाहरणों में यह स्वरूप भिन्न रहता था।”

जाहिरा तौर पर, फण्डों अमेरिका के लिए कोई नई बात नहीं हैं। जर्मनी में फण्डों अग्रणी राजनीतिक पार्टियों से जुड़े होते हैं। कैंडिड अडेन्योर फण्डों (क्रिश्चियन डेमोक्रेट्स),

फ्रेडरिक इबर्ट फण्डों (सोशल डेमोक्रेट्स) और हेनरिक बॉल फण्डों (ग्रींस)। अन्य फण्डों में राइट्स एण्ड डेमोक्रेसी (कनाडा), वेस्टमिन्स्टर फण्डों (ब्रिटेन) और यूरोपियन फोरम फॉर डेमोक्रेसी एण्ड सोलिडैरिटी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, ये फण्डों पूरे विश्व में गैर सरकारी संगठनों को मिलने वाले फण्ड के स्रोत मात्र होने के अलावा भी बहुत कुछ हैं। प्रत्यक्ष कारपोरेट अनुदान और सरकारी फण्ड, दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। अमेरिकी कांग्रेस द्वारा स्थापित दी नेशनल एन्डोवमेंट फॉर डेमोक्रेसी, निजी फण्डों के मॉडल पर आधारित था; यह निजी उद्यम, मजदूर एकता, आदि को बढ़ावा देने के लिए सहायक फण्डों को फण्ड देता है। डिपार्टमेंट फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट (डीएफआईडी) ब्रिटेन का सहायता देने वाला आधिकारिक निकाय है।

अमेरिकी सरकार और निजी फण्डों के बीच की सीमा रेखा हमेशा से अस्पष्ट रही है। कई वर्षों तक फोर्ड फण्डों के न्यासकर्ताओं के अध्यक्ष रहे, जॉन. जे. मैक्लॉय “फण्डों को अमेरिकी सरकार का अर्ध-विस्तार मानते थे। उदाहरण के लिए, हर दो महीने पर वाशिंगटन के नेशनल सिक्क्यूरिटी काउन्सिल (एनएससी) में टपक पड़ना, और अनौपचारिक ढंग से यह पूछना कि क्या एनएससी की कोई विदेशी परियोजना है, और क्या एनएससी फण्ड लेना चाहेगा, उनकी आदत में शुमार था।”

फण्डों का अमेरिकी सरकार की योजनाओं के साथ सहयोग का एक बड़ा उदाहरण **इण्डोनेशिया** में फोर्ड का काम था, जिसकी बाद में हर जगह नकल की गई। एमआईटी, कॉर्नेल, बर्कले और अंत में हार्वर्ड के माध्यम से, फोर्ड फण्डों अमेरिकी संरक्षण के अन्दर काम करने वाले आधुनिक प्रशासकों के रूप में इण्डोनेशिया के अधिकारियों को प्रशिक्षण देता था। इसने इण्डोनेशिया के एक विश्वविद्यालय में अमेरिकी शैली के एक अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम की स्थापना की और इण्डोनेशिया के इस कार्यक्रम को चलाने के लिए शिक्षकों को अमेरिकी विश्वविद्यालय में प्रशिक्षित किया। इण्डोनेशिया के उच्चस्तरीय अफसर अमेरिका में प्रशिक्षित किए गए, जहाँ उन्हें हार्वर्ड और सिरॉकस विश्वविद्यालयों में अमेरिकी सेना से विद्रोह को दबाने की, और साथ ही वाणिज्य और लोक-प्रशासन में प्रशिक्षण दिया जाता था। बर्कले से छुट्टी पर आए आरओटीसी के एक कोलोनेल के परामर्श पर कुछ समय तक इण्डोनेशिया के सभी सम्भ्रान्त विश्वविद्यालयों के छात्रों को सेना द्वारा एक कार्यक्रम के तहत अर्धसैनिक प्रशिक्षण दिया गया। इन सबसे 1965 के तख्तापलट की जमीन तैयार करने में मदद मिली, जिसमें वैध-सरकार को हटा दिया गया और 500,000 से भी अधिक कम्युनिस्टों और उनके समर्थकों की हत्या कर दी गई।

**लातिन अमेरिका** ने बहुत से तख्तापलट देखे हैं। कारागुआ, कोलम्बिया, पेरू और कई जगहों पर। “बीसवीं

सदी के आखिरी तीन दशकों में हजारों की संख्या में एनजीओ देशभर में दिखने लगे। कुछ ने लघुस्तरीय आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया, जैसे कि 'अनौपचारिक अर्थव्यवस्था' में माइक्रोक्रेडिट या आर्थिक सहायता देना, जबकि दूसरे एनजीओ झुग्गी बस्तियों में स्वास्थ्य केन्द्रों का प्रबन्ध या मकान के मालिकाने के लिए अर्थप्रबन्धन करते थे। मानवाधिकार के लिए काम कर रहे एनजीओ जो व्यापक पैमाने पर काम कर रहे थे, यह सन्देश देते थे कि न तो स्त्री-समानता और न ही पुलिस की उचित प्रणाली में किसी बुनियादी परिवर्तन की जरूरत है। 'यह गौर किया जाना चाहिए कि ये मानवाधिकार एनजीओ इस बात पर ध्यान देते थे कि मानवाधिकार के स्थानीय हननकर्ताओं के साथ अमेरिकी और यूरोपीय गठजोड़ को भी दोषी न ठहरा दिया जाए।' फाउण्डेशन द्वारा निर्मित अमेरिकन वॉच संगठन (अब, ह्यूमन राइट्स वॉच/अमेरिकाज) ने लातिन अमेरिका में होने वाले मानवाधिकार हनन को अमेरिका-समर्थित सैन्यवाद (जिसमें डेथ स्क्वाड्स शामिल हैं) से जोड़कर नहीं देखा। इसने खोज की कि असली समस्या तो बस 'मानवाधिकारों के प्रति सम्मान का अभाव है।'।' रोएलोव्स कहती हैं,

“लातिन अमेरिका के एनजीओ एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य के लिए काम करते थे। जब सैन्य तानाशाही और नवउदारवादी सरकारें आईं तो उस समय विश्वविद्यालयों और अन्य सरकारी नौकरियों में लगे कई बुद्धिजीवियों को नौकरी से निकाला गया, जैसे कि चिली में पिनोशे के शासन में... फोर्ड, रॉकफेलर और अन्य फाउण्डेशनों द्वारा समर्थित स्वयंसेवी संगठनों और अनुसंधान केंद्रों में इन लोगों को ले लिया गयाजिनमें उग्रपंथी किस्म के लोग भी शामिल थे। धीरे-धीरे उनका उग्रपंथ कम होता गया।”

नॉर्थ अमेरिकन कांग्रेस ऑन लैटिन अमेरिका, जो कभी स्वयंसेवी संगठनों की आलोचक हुआ करती थी, का रूपान्तरण कर दिया गया, और अब वह स्वयं फोर्ड फाउण्डेशन से भारी मात्रा में फण्ड प्राप्त करता है। इसी प्रकार लातिन अमेरिका के शोध संस्थान अब साम्राज्यवाद की आलोचना या डिपेण्डेंसी थ्योरी पर वाद-विवाद नहीं करते। 'पहचान की राजनीति' आज का नया फैशन है, जो राजसत्ता की हिंसा की बजाय घरेलू, पारिवारिक हिंसा को लक्ष्य बनाती है।

**दक्षिण अफ्रीका** में, अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस ने समाजवादी सिद्धांतों को अंगीकृत किया, सशस्त्र संघर्ष का रास्ता अपनाया और दक्षिण अफ्रीकी कम्युनिस्ट पार्टी को भी अपने में समाहित कर लिया था। जमीन और अन्य संसाधनों को जनता को वापस देना एएनसी के घोषित लक्ष्य थे। दक्षिण अफ्रीका न केवल सोने और हीरे से, बल्कि खास तौर पर क्रोमियम और फेरोक्रोम, मैंगनीज और फेरोमैंगनीज, प्लैटिनम और वानाडियम से भी समृद्ध था। इसके अतिरिक्त, यहाँ विकास का पूरे अफ्रीका पर व्यापकतर प्रभाव हो सकता था।

दक्षिणी अफ्रीका के प्रति अमेरिका की नीतियों पर, 1978 में रॉकफेलर ने एक अध्ययन आयोग का समन्वयन किया। इस आयोग की अध्यक्षता फोर्ड फाउण्डेशन के अध्यक्ष ने की थी। इस आयोग ने बहुमत के शासन के लिए क्रमिक संक्रमण के मार्ग का नक्शा दिया। अमेरिकी निजी संगठनों से आग्रह किया गया कि

वे “परिवर्तन के लिए, अश्वेत नेतृत्व को सहयोग देने के लिए, और अश्वेतों के हित को बढ़ावा देने के लिए, अफ्रीका में काम कर रहे संगठनों का समर्थन करें” (जोर हमारा)। फोर्ड ने जनहित कानून की कम्पनियों, अश्वेत ट्रेड यूनियनों, साउथ अफ्रीकन कॉउन्सिल ऑफ चर्चज को सहायता देने के साथ अश्वेतों को वकील बनने में सक्षम बनाने के लिए छात्रवृत्ति भी दी। आखिरकार जब रंगभेद का बातचीत से अन्त किया गया, तो एएनसी के अन्दर और बाहर एक नया नेतृत्व इन्तजार कर रहा था।

**पूर्वी यूरोप** में कम्युनिस्ट कहे जाने वाले शासन के समाप्त होने के काफी पहले से ही फोर्ड, रॉकफेलर, कार्नेगी, मैकआर्थर, ब्रॉडले, मेकनाइट, मॉट, मेलन और सोरोस फाउण्डेशन पूर्वी यूरोप के विद्वानों, विश्वविद्यालयों, और संस्थानों को मदद देना शुरू कर चुके थे। कई दशकों से इन देशों के सम्भ्रान्त बुद्धिजीवी वर्ग के साथ सम्बन्ध बढ़ाने के लिए योजनाबद्ध प्रयास किए जा रहे थे। निजी अनुदान देने वालों से और अमेरिकी सरकार से फण्ड प्राप्त करने वाले समूह जैसे चेकोस्लोवाकिया में सिविक फोरम और पोलैण्ड में सोलिडरिटी वहाँ की सत्ता को उखाड़ फेंकने का लक्ष्य रखते थे।

अगले चरण में भी यह अनौपचारिक और औपचारिक सहयोग जारी रहाजिसने एक प्रभुत्वकारी सिद्धान्त और सम्भ्रान्त वर्ग का निर्माण किया। इसमें विश्वविद्यालयों से सहयोग (पुराने को खत्म कर एक नए सेन्ट्रल यूरोपियन विश्वविद्यालय का निर्माण किया गया), एक नई राजनीतिक पार्टी का निर्माण, नए संसद सदस्यों के लिए 'प्रशिक्षण कार्यक्रम', नए मीडिया संस्थान (स्वतंत्र अखबार केन्द्र, पत्रकारों के लिए प्रशिक्षण, रेडियो, टी.वी स्टेशनों के लिए संसाधन और उपकरण, पुस्तकालय और इलेक्ट्रॉनिक डाटाबेस), शामिल थे। 1989 से 1994 के बीच निजी फाउण्डेशनों ने पूर्वी यूरोप में 4500 लाख डॉलर खर्च किए। विभिन्न देशों के प्रमुख अधिकारी और सलाहकार फण्ड प्राप्त करने वालों में शामिल थे। 1995 तक, चेक गणराज्य में 29,000, पोलैण्ड में 20,000 और अन्य देशों में भी लगभग इतनी ही संख्या में एन. जी.ओ. मौजूद थे। “ये लगभग पूरी तरह विदेशी कारपोरेशनों, फाउण्डेशनों, सरकारों, राजनीतिक पार्टियों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों जैसे यूरोपियन यूनियन और वर्ल्ड बैंक से समर्थित थे।”

इस क्षेत्र को निजी फण्ड देने वालों में जॉर्ज सोरोस संभवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। पूरे विश्व में सोरोस फाउण्डेशन को 34 देशों में देखा जा सकता है, जिनमें से 26 पूर्वी यूरोप और पूर्व सोवियत गणराज्यों में हैं। हाल में ही जॉर्जिया की 'क्रान्ति' को अन्य तमाम लोगों के साथ सोरोस ने भी समर्थन दिया था (“व्हेन एन.जी.ओज अटैक: इम्प्लीकेशंस ऑफ दी कू इन जॉर्जिया” देखें, [www.counterpunch.com](http://www.counterpunch.com), 6/12/03)। उक्रेन के वर्तमान संकट में सोरोस, नेड और अन्य पश्चिमी फण्डिंग एजेन्सियों का हाथ है (यू.एस कैम्पेन बिहाइन्ड दी टर्मोइल इन कीएव” इयन ट्रॉयनर, 26/11/04; दी गार्जियन; “वेस्टर्न एग्जेशन: हाउ दी यू. एस एण्ड ब्रिटेन आर इन्टरवीनिंग इन यूक्रेन्स इलेक्शन” जॉन लाफलेण्ड, *दी स्पेक्टेटर*, 5/11/04, <http://globalreserch.ca/articals/LAU411A.html>; “आई.एम.एफ स्पॉन्सर्ड ‘डेमोक्रेसी’ इन दी यूक्रेन” माइकल चोसूदोवस्की, 28/11/04, <http://>

globalresearch.ca/articles/CH0411D.html)

राजनीतिक पार्टियाँ अक्सर स्थानीय कानूनों का उल्लंघन करते हुए फ़ाउण्डेशनों से प्रत्यक्ष रूप से फण्ड पाती हैं। जिन संगठनों ने चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिस्ट सरकार को उखाड़ फेंका था उन्हें अमेरिका के नेशनल इण्डोवमेण्ट फॉर डेमोक्रेसी के फण्ड मिलते थे। हंगरी में अमेरिकी राजदूत, मार्क पालमर के शब्दों में “मैं विरोधी पार्टियों को सहयोग करने के पक्ष में हूँ, जिसमें नेशनल इण्डोवमेण्ट फॉर डेमोक्रेसी से उनके लिए पैसे जुगाड़ना भी शामिल है। मैं समझता हूँ कि हमें इस पर गर्व होना चाहिए”। बड़े पैमाने पर चल रही ये सभी फण्डिंग गतिविधियाँ इस क्षेत्र में हो रहे व्यापक आर्थिक परिवर्तनों का समर्थन करती हैं और उन्हें सहायता देती हैं और ये आर्थिक परिवर्तन हैं व्यापक निजीकरण और व्यापक ग़रीबी।

### एक महत्वपूर्ण अध्ययन

रोएलोव्स के अध्ययन को आर्थिक सहायता, प्रोफेसर के रूप में स्वयं उनकी ही कमाई से मिली है। इसलिए उनको उपलब्ध समय और शोध संसाधन सीमित रहे होंगे, लेकिन फिर भी उनका यह अध्ययन इस विषय के महत्व और इस क्षेत्र में हो सकने वाले अनुसंधानों, को स्थापित करने में सहायक रूप से सफल रहा है। वास्तव में यही उनका लक्ष्य भी है, और आगे के शोध के लिए सवाल उठाते हुए वे अपने अध्ययन का समाहार करती हैं।

एक ओर रोएलोव्स फ़ाउण्डेशनों के महत्व को स्थापित करती हैं, लेकिन हमें सत्ताधारी वर्ग के अन्य उपकरणों को नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए या कम करके नहीं देखना चाहिए, विशेषकर से उनका मुख्य उपकरण *राज्यसत्ता*। फ़ाउण्डेशनों द्वारा की जाने वाली कई ऐसी गतिविधियाँ हैं, जिन्हें राज्यसत्ता प्रत्यक्ष रूप से करती है। अमेरिकी राज्यसत्ता पीड़ित और शोषितों के हिस्से को अपने में शामिल कर लेती है नैतृत्व से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने के साथ महत्वपूर्ण जन कल्याण और संवैधानिक कार्रवाइयों को अंजाम देने वाले केनेडी और जॉनसन प्रशासन के नागरिक अधिकार आन्दोलनों को शांत करने के प्रयास इसके ही उदाहरण हैं। राज्यसत्ता स्वयं पूरे विश्व में एन.जी.ओ को फण्ड देती है, और ये फण्ड यूएसएड और नेशनल इण्डोवमेण्ट फॉर डेमोक्रेसी जैसे सरकारी अंगों के माध्यम से दिया जाता है (हालाँकि निश्चय ही ‘स्वतंत्र’ फ़ाउण्डेशनों की विश्वसनीयता सरकारी संस्थाओं से कहीं ज्यादा है)। अपने फायदे के लिए, राज्यसत्ता ‘मानवाधिकार’, ‘नारी मुक्ति’, और ‘अल्पसंख्यकों की रक्षा’ के झण्डों का अफगानिस्तान, यूगोस्लाविया और इराक (और शायद भविष्य में सूडान पर) हमले को सही ठहराने के लिए उपयोग करते हुए बड़ी निपुणता से जनान्दोलनों के नारों को विकृत करती है।

इसके अलावा फ़ाउण्डेशनों और उसके कार्यकलापों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ, स्वयं फ़ाउण्डेशनों द्वारा नहीं बनाई जातीं, बल्कि देश में और विदेश में, दोनों जगहों पर राजसत्ता की दमनकारी कार्रवाइयों द्वारा बनाई जाती हैं। अपने देश में जनवादी मुखौटे के बावजूद, सत्ताधारी वर्ग उन शक्तियों का नृशंसता से दमन करने में कोई कसर नहीं छोड़ता जो व्यवस्था के लिए दूरगामी ख़तरा पैदा करती हैं। कई संगठनों के खिलाफ घुसपैठ, कुत्साप्रचारकों, उत्पीड़न, गिरफ्तारी और यहाँ तक कि

हत्याओं का भी उपयोग किया जाता है। 1960 के दशक के आखिर और 1970 के दशक की शुरुआत में, मुख्यतः इन्हीं तरीकों से, मैकार्थी काल में अमेरिकी कम्युनिस्ट पार्टी और अन्य कई संगठनों और आन्दोलनों के *कोरों* को बर्बाद किया गया था। वास्तव में इन संगठनों के खिलाफ दमन ने फ़ाउण्डेशनों द्वारा प्रायोजित ‘सुरक्षित’ गतिविधियों को ज़्यादा आकर्षक बनाने में मदद की है।

विदेशों में, तख़्तापलट के कामों को अंजाम दिया गया, विद्रोहों को कुचला गया, दमनकारी सत्ताओं को सहारा दिया गया, और साम्राज्यवादी सेना और खुफिया एजेंसियों या उनके मातहतों के द्वारा विद्रोही राष्ट्रों में घुसपैठ की गई। 1973 में सैन्य तख़्तापलट के द्वारा ही अलेन्दे की सरकार को उखाड़ फेंका गया और चिली के बुद्धिजीवियों को फ़ाउण्डेशनों की फण्डिंग देने की जमीन तैयार की गई; उसी प्रकार इण्डोनेशिया में फोर्ड का काम सैन्य तख़्तापलट के माध्यम से सुकर्ण को उखाड़ फेंकने की प्रमुख घटना में सहायक था। साम्राज्यवादी देश और आश्रित सत्ता के बीच का रिश्ता मुख्यतः वैचारिक प्रभुत्व पर नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी देश द्वारा आश्रित देश पर राजनीतिक प्रभुत्व पर आधारित होता है; और यह राजनीतिक प्रभुत्व स्वयं उन साम्राज्यवादी देशों की आर्थिक और सैन्य हैसियत पर निर्भर करता है। इस प्रकार पूर्वी यूरोप और तीसरी दुनिया के देशों में फ़ाउण्डेशन के हस्तक्षेप की परिस्थितियाँ वहाँ की सत्ता के चरित्र पर निर्भर करती है।

आखिर में, जनसंख्या के अशान्त हिस्से के दिशा परिवर्तन और उन्हें शान्त करने की फ़ाउण्डेशनों द्वारा प्रायोजित गतिविधियों (या सम्मिलित करने या ध्यानाकर्षण करने के अन्य कार्य) का प्रभाव बहुत हद तक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के चरित्र पर आधारित होता है। एक समाज में जहाँ एक विशाल समृद्ध वर्ग मौजूद है, यानी एक साम्राज्यवादी देश में समृद्धि के दौर में, वहाँ के सत्ताधारी वर्ग के लिए अपने विचारों का प्रचार करना, और विरोधियों को अलग-थलग करके, बाकी आबादी को जीतना आसान होता है। लेकिन साम्राज्यवादी देशों में भी मंदी के दौरान दरारें पैदा हो जाती हैं : अमेरिका में 1930 के दशक में कई जुझारू आन्दोलन उठ खड़े हुए, लेकिन युद्ध के बाद की समृद्धि के कारण वे दब गए। भारत जैसे देश, जहाँ एक बड़ी आबादी अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष कर रही है, वहाँ सत्ता वर्ग का अधिनायकत्व बहुत कमजोर होता है। इसका यह मतलब नहीं है कि हमारे जैसे समाज में फ़ाउण्डेशनों द्वारा प्रयोजित संगठनों, जैसे स्वयंसेवी संगठनों को गम्भीरता से नहीं लिया जाना चाहिए, लेकिन लोगों की चेतना और आन्दोलनों के मार्ग में उनके द्वारा पैदा किए जाने वाले रोड़ों को पार कर पाने की अधिक सम्भावना मौजूद होती है।

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के प्रेक्षकों के लिए रोएलोव्स की रचना की प्रासंगिकता सुस्पष्ट है। थोड़े बहुत बदलाव के बाद जो कुछ भी वह लिखती हैं, वह यहाँ बड़े पैमाने पर हो रही एन.जी.ओ की घुसपैठ पर लागू होता है, जिनमें से अधिकांश अमेरिकी फ़ाउण्डेशनों से फण्ड पाते हैं। जनहित याचिकाएँ, मानवाधिकार संगठन, नारी विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी संगठन, फ़ाउण्डेशनों से फण्ड प्राप्त करते हैं जिनका प्रभाव वही है जो अमेरिका में है। ●

## संसदीय बातबहादुरों के कारनामे

### • अभिनव

पिछले वर्ष संयुक्त प्रगतिशील (!?) गठबंधन की सरकार बनने के बाद तमाम भलेमानस लोगों के तमाम भ्रम टूटे होंगे। जो लोग यह समझते थे कि संप्रग सरकार वाम मोर्चा के समर्थन के कारण उदारीकरण और निजीकरण की उस प्रक्रिया पर कुछ लगाम लगाएगी जिसे राजग सरकार ने द्रुत गति से चलाया था, वे अपनी इस गलतफहमी से बाहर आ चुके हैं। संप्रग सरकार का एक वर्ष पूरा होने से पहले ही यह बात बिल्कुल साफ हो चुकी है कि वाम मोर्चा की हैसियत वैसी ही है जैसी कि उस पत्नी की होती है जो पति को लगातार मायके चले जाने की धमकी देती है लेकिन पति पर कोई असर न पड़ने पर मायके जाती भी नहीं! चूँकि यह पति थोड़ा उदार है इसलिए बीच-बीच में कुछ रियायतें दे देता है।

राजग सरकार ने आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को ताबड़तोड़ तरीके से चलाया था। संप्रग सरकार ने इस प्रक्रिया को अधिक व्यवस्थित और योजनाबद्ध ढंग से चलाया है। इससे संसदीय वामपंथी बातबहादुरों के लिए मुश्किल हालात पैदा हो जाते हैं। सरकार जब भी पेट्रोलियम उत्पादों के दाम बढ़ाने, किसी सार्वजनिक उद्यम का विनिवेश, या प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि जैसा कोई कदम उठाती है तो ये बातबहादुर दोन किहोते की तरह गते की तलवारें भौंजते सरकार पर टूट पड़ते हैं, समर्थन पर पुनर्विचार करने की धमकी देते हैं लेकिन साम्प्रदायिक शक्तियों को सत्ता से दूर रखने की दुहाई देते हुए समर्थन जारी रखते हैं। वैसे भी यह नौटंकी करना जरूरी होता है क्योंकि इन बातबहादुरों का मुख्य वोट बैंक बंगाल, केरल और त्रिपुरा के मजदूरों से आता है और उन्हें वहाँ भी मुँह दिखाना पड़ता है। नतीजतन, उन्हें थोड़ा शोरगुल मचाना पड़ता है। लेकिन जब वे आर्थिक सुधारों पर हल्ला मचाते हैं तो चिदम्बरम महोदय को उन्हें शांत करने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती। वह उनके सामने बंगाल की आर्थिक फैक्टशीट खोल देते हैं जहाँ ये बातबहादुर वही नीतियाँ लागू कर रहे हैं जिनका वे केन्द्र में विरोध करते हैं। केरल में ये 4000 करोड़ रुपये की सम्पत्ति पर कुण्डली मारे बैठे हैं। अगर इस पर भी ये संसदीय वामपंथी शोर मचाते हैं तो कांग्रेस भी उनका हाल पूछना बंद कर देती है क्योंकि वह भी जानती है कि इनकी औकात ज़्यादा से ज़्यादा उनकी पालकी का कहार बनने की ही है। इस पर ये वामपंथी दोन किहोते नाराज पत्नी की तरह कोप भवन में चले जाते हैं, लेकिन समर्थन देते रहते हैं। फुर्सत होने पर कांग्रेस उन्हें मना लेती है और वे खुशी-खुशी कांग्रेस की धर्मनिरपेक्ष, कल्याणकारी पूँछ में कंधी करने लगते हैं। माकपा ने तो इस बार अपनी पार्टी कांग्रेस में कांग्रेस को धर्मनिरपेक्ष ही घोषित कर

(पेज 40 पर जारी)

## प्रधानमंत्री महोदय की अमेरिका-यात्रा

मनमोहन सिंह की अमेरिका यात्रा एक सप्ताह तब अखबार की सुर्खियों में बनी रही। व्हाइट हाउस में उनका भव्य स्वागत हुआ और अमेरिका मीडिया ने इस यात्रा को काफी जगह और अहमियत दी। इतनी अहमियत वाजपेयी की अमेरिका-यात्रा को भी नहीं मिली थी। इस तथ्य से कई बातें खुलती हैं।

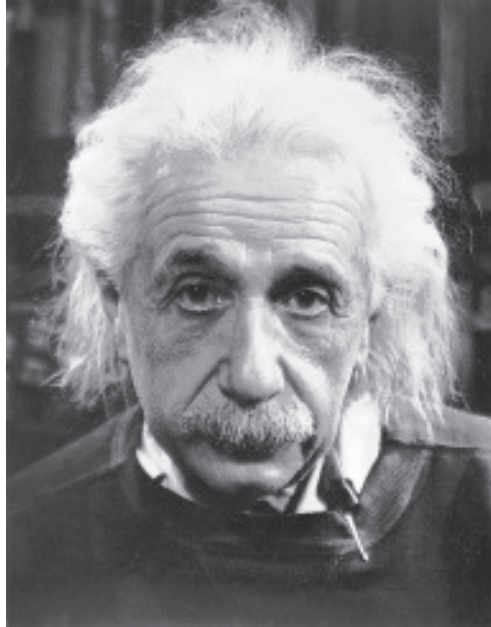
मनमोहन सिंह कई जगह थोड़ा झुके और उसके बदले कुछ रियायतें, वायदे और आश्वासन लेकर आए। जैसे कि ईरान से आने वाली गैस-पाइपलाइन पर मनमोहन सिंह थोड़ा नरम पड़े। बदले में अमेरिका ने नाभिकीय क्षेत्र में सहयोग का आश्वासन दिया। अमेरिका भारत को कुछ छूट देने को वस्तुगत रूप से बाध्य हुआ है। विश्व पटल पर हुई हालिया घटनाओं से साफ हो गया है कि आज के दौर में एक ध्रुवीय विश्व का बनना संभव नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में रूस की अर्थव्यवस्था ने फिर से शक्ति ग्रहण की है और वह ऐसी स्थिति में पहुँच गया है जहाँ वह पूरी अमेरिकी अर्थव्यवस्था के संतुलन को बिगाड़ सकता है। रूस और चीन ने अभी संयुक्त सैनिक अभ्यास करके अपने घनिष्ठ होते संबंधों को बिल्कुल जाहिर कर दिया है। इस चीनी-रूसी धुरी के अलावा यूरोप में फ्रांसीसी-जर्मन धुरी पहले से ही मौजूद है जो यूरोपीय संघ के जरिए डॉलर की सत्ता को चुनौती देती रहती है। कई मुद्दों पर इन दोनों धुरियों के बीच सहमति बनती नजर आ रही है। ऐसे में अमेरिकी शक्ति को तत्काल तो कोई गंभीर चुनौती नहीं है लेकिन यह साफ है कि भविष्य में एक ध्रुवीय विश्व की दूर-दूर तक कोई संभावना नहीं है। अमेरिका का इन दोनों ही धुरियों से समझौता भी है और प्रतिस्पर्द्धा भी। विश्व साम्राज्यवादी शक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा जिस स्थिति में पहुँच गई है उसमें तीसरी दुनिया की उभरती अर्थव्यवस्थाओं की मोलभाव करने की ताकत बढ़ गई है। भारत को दुनिया भर में जो अधिक महत्व दिया जा रहा है उसके पीछे विश्व राजनीति के नए समीकरण मौजूद हैं। हाल ही में विश्व के उन्नत देशों के समूह चार के सम्मेलन में भारत को “स्पेशल इनवाइटी” के रूप में बुलाया गया। मनमोहन सिंह को अमेरिका में काफी तरजीह दी गई।

दूसरी ओर भारत का पूँजीपति वर्ग भी अपने आपको किसी कैप के साथ न जोड़कर ‘टाइटरोप वॉकिंग’ कर रहा है। उसने अमेरिका के साथ रूस-चीन धुरी और यूरोपीय संघ से भी घनिष्ठता कायम रखी है। वह इन सबसे मोलभाव कर रहा है। यह कोई नई बात नहीं है। भारत का पूँजीपति वर्ग कोई कठपुतली दलाल या घटनाटेकू पूँजीपति वर्ग नहीं है। वह सभी

(पेज 40 पर जारी)

# आइंस्टीन होने का मतलब

वे 1905 के बसन्त के दिन थे, जब विज्ञान की दुनिया में एक छब्बीस वर्षीय युवा ने सहसा गुमनामी के अंधेरे से कालातीत ख्याति के क्षितिज की ओर एक लम्बी छल्लाँग लगाई। समूची बीसवीं शताब्दी महान अन्वेषणों और महान वैज्ञानिकों की शताब्दी थी, लेकिन 1905 में सापेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त की खोज के चन्द एक वर्षों बाद ही आइंस्टीन की ख्याति और महत्ता की तुलना शताब्दी-सीमान्तों का अतिक्रमण करके की जाने लगी। विज्ञान के इतिहास में आइंस्टीन का स्थान न्यूटन और चार्ल्स डार्विन के समकक्ष माना जाने लगा था और आज भी यह एक निर्विवाद मान्यता है। सापेक्षिकता सिद्धान्त के जन्म के साथ ही विज्ञान अब वैसा एकदम नहीं रह गया जैसा कि वह पहले था। क्लासिकी भौतिकी का युग बीत चुका था। यह उचित ही है कि सापेक्षिकता सिद्धान्त के इस शताब्दी वर्ष को पूरी दुनिया में 'भौतिकी के वर्ष' के रूप में मनाया जा रहा है।



प्रकृति विज्ञान के अन्य महत्वपूर्ण मूलभूत सिद्धान्तों की ही भाँति सापेक्षिकता सिद्धान्त ने भी समाज-विज्ञान की सैद्धान्तिकी के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला और कई महत्वपूर्ण बहसों को जन्म दिया। महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने समय के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य पर आइंस्टीन का मात्र परोक्ष सैद्धान्तिक प्रभाव ही नहीं था। वह एक उत्कट मानवतावादी और गहन सामाजिक सरोकारों वाले व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन पर्यन्त साम्राज्यवादी युद्धों, अंधराष्ट्रवाद और नस्लवाद-रंगभेदवाद का मुखर विरोध किया, बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के परभक्षी चरित्र, पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में अन्तर्निहित अराजकता और उससे बेरोजगारी, भुखमरी जैसी समस्याओं, विभीषिकाओं के अनिवार्यतः पैदा होने की प्रक्रिया की भी तीखी आलोचना प्रस्तुत की। नागरिक स्वतंत्रता, समानता और विश्व शांति के बारे में आइंस्टीन की सोच बीसवीं शताब्दी के कमोवेश तीसरे दशक तक यूटोपियाई और अनुभववादी थी।

चौथे दशक से लेकर पाँचवे दशक तक उनका सामाजिक चिन्तन इस दिशा में विकसित हुआ कि वह अंततः दुनिया की सारी समस्याओं की जड़ पूँजीवादी उत्पादन और विनिमय प्रणाली को मानने लगे थे और इसका एकमात्र एवं अनिवार्य विकल्प समाजवाद को मानने लगे थे, हालाँकि तब भी समाजवाद की उनकी अवधारणा इस मायने में यूटोपियाई ही थी कि वह समाजवाद की स्थापना के लिए वर्ग-संघर्ष के द्वारा पूँजीवादी राज्य सत्ता के ध्वंस की ऐतिहासिक अनिवार्यता के बारे में स्पष्ट नहीं थे, या कहा जा सकता है कि शंकालु थे। अपने इन वैचारिक अन्तरविरोधों के बावजूद आइंस्टीन निस्सन्देह साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के धुर विरोधी, पूरी दुनिया की आम जनता के हितों और न्याय-स्वतंत्रता-समानता के मूल्यों के निष्कपट पक्षधर थे। वह आजीवन फासीवाद, नस्लवाद और हर प्रकार के सर्वसत्तावाद का विरोध करने वाले क्रान्तिकारी जनवादी और जुझारू मानवतावादी थे। हालाँकि वह एक

सुसंगत मार्क्सवादी (द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद की समझ से लैस) नहीं थे, लेकिन एक अकुण्ठ भौतिकवादी थे और मनुष्य के भाग्य नियन्ता के रूप में किसी भी दैवी सत्ता के अस्तित्व को कदापि स्वीकार नहीं करते थे।

बहरहाल, आइंस्टीन के सामाजिक सरोकारों की चर्चा से पहले उस सापेक्षिकता सिद्धान्त की संक्षिप्त परिचयात्मक चर्चा उचित होगी, जिसकी सौवीं वर्षगांठ पूरी दुनिया में 'भौतिकी के वर्ष' के रूप में मनाई जा रही है।

1905 में जब आइंस्टीन के चार युगान्तरकारी शोधपत्र भौतिकी की अग्रणी जर्मन शोधपत्रिका 'अनालेस डेर फिजिक' में प्रकाशित हुए, उस समय वह अकादमिक दुनिया से अलग बर्न स्थित स्विस पेटेंट ऑफिस में नौकरी कर रहे थे। जर्मनी

में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद अनिवार्य सैनिक सेवा से बचने के लिए उन्होंने 1896 में अपनी जर्मन नागरिकता छोड़ दी थी। आगे की शिक्षा उन्होंने स्विट्जरलैण्ड में हासिल की और 1901 में वहाँ की नागरिकता भी ले ली थी। 1903 में शादी के बाद वह एक बच्ची के पिता भी बन चुके थे। दो वर्ष अस्थायी तौर पर अध्यापन का काम और फिर पेटेण्ट ऑफिस की नौकरी करते हुए आइन्स्टीन का महान मस्तिष्क लगातार विज्ञान के एक नए युग के उद्घोष की तैयारी में लगा हुआ था। 1905 में चार युगान्तरकारी शोधपत्रों के प्रकाशन के कुछ ही वर्षों बाद उस महान वर्ष को 1543 (जब कोपरनिकस की महान वैज्ञानिक कृति 'दे रेवोल्यूशनिस ऑर्बियम कोएलेस्टियम' प्रकाशित हुई) और 1686 (जब न्यूटन ने अपनी कृति 'प्रिंसिपिया' पूरी की) के समकक्ष रखा जाने लगा। कॉपरनिकन क्रान्ति के बाद भी न्यूटोनियन भौतिकी में प्रकृति के मूलभूत नियमों और स्थूल इन्द्रियानुभूति के बीच जो सुकूनतलब रिश्ता अब तक मौजूद था वह सदा के लिए विलुप्त हो गया। आइन्स्टीन ने उस युग की शुरुआत कर दी थी, जब, जैसा कि वह स्वयं कहा करते थे, विज्ञान की मूलभूत अवधारणाएँ "प्रत्यक्ष अनुभव के दायरे से और अधिक दूर हट गई थीं।" इसका श्रेय भी मुख्यतः आइन्स्टीन को ही जाता है कि उनके द्वारा प्रवर्तित राह पर भौतिकी आज इतना आगे निकल आई है और इसके सीमान्त इतने अधिक विस्तारित हो गए हैं कि नए विद्यार्थियों के लिए खतरा

**...हमारी लगभग सभी गतिविधियाँ और इच्छाएँ दूसरे मनुष्यों के अस्तित्व से जुड़ी हैं।...हम जो खाना खाते हैं वह दूसरे लोग पैदा करते हैं, हम जो कपड़े पहनते हैं वह दूसरे लोगों ने बनाए हैं, हम जिन घरों में रहते हैं उनका निर्माण भी दूसरे लोगों ने किया है।...अगर किसी व्यक्ति को अकेला छोड़ दिया जाए तो वह इस कदर आदिम और जंगली रह जाएगा, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। आइन्स्टीन ('समाज एवं व्यक्तित्व')**

इस बात का है कि प्रकृति की हमारी बुनियादी समझदारी में आइन्स्टीन द्वारा लाए गए असाधारण परिवर्तन को शायद वे समझ ही न सकें।

1905 में प्रकाशित शोधपत्रों की श्रृंखला में से पहले शोधपत्र में आइन्स्टीन ने प्रकाश के कणों या क्वाण्टमों या फोटॉनों के बारे में नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसके पूर्व क्वाण्टम सिद्धान्त का मैक्स प्लांक द्वारा सूत्रपात हो चुका था। लेकिन सच पूछें तो आइन्स्टीन का यह शोधपत्र ही क्वाण्टम क्रान्ति का पहला तोप का धमाका था। इस शोधपत्र में आइन्स्टीन ने यह युक्तियुक्त परिकल्पना प्रस्तुत की कि प्रकाश पदार्थ के साथ अपनी अन्तःक्रिया के दौरान अपनी फ्रीक्वेंसी के समानुपातिक ऊर्जा की एक सुनिश्चित मात्रा या 'क्वाण्टम' से युक्त कण के समान व्यवहार करता है। अगले दो दशकों के दौरान प्रयोगों ने फोटॉन की इस परिकल्पना को सही सिद्ध किया और इसके लिए आइन्स्टीन को 1921 में नोबेल पुरस्कार दिया गया। उसी वर्ष 18 जुलाई को प्रकाशित होने वाला आइन्स्टीन का दूसरा शोधपत्र ब्राउनियन गति की व्याख्या से सम्बन्धित था जिसने परमाणुओं की वास्तविक स्थिति को निर्णायक रूप से स्पष्ट करने के साथ ही ऐसी पद्धतियाँ विकसित कीं जो आज भी आधुनिक सांख्यिकीय भौतिकी के बुनियादी अवयव हैं।

सापेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त से सम्बन्धित आइन्स्टीन के दो शोधपत्र क्रमशः सितम्बर और नवम्बर 1905 में 'अन्नालेस डेर फिजिक' में प्रकाशित हुए। सापेक्षिकता सिद्धान्त ने दिक् (स्पेस) और काल के अन्तर्सम्बन्धों पर पुनर्विचार करते हुए उनके एकीकरण की क्रान्तिकारी अवधारणा निरूपित की। प्रकाशिकी और विद्युत गतिकी के विकास के फलस्वरूप निरपेक्ष काल, निरपेक्ष समक्षणिकता (साइमल्टेनिटी) और निरपेक्ष दिक् की अवधारणाओं का परित्याग कर दिया गया। विशेष सापेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार, काल का प्रवाह किसी प्रणाली की गति पर निर्भर करता है और काल के अन्तराल (और दिक् के आयाम भी) इस तरह से परिवर्तित होते हैं कि सम्बद्ध प्रणाली में प्रकाश का वेग प्रणाली की गति के अनुसार परिवर्तित नहीं होता। यानी प्रकाश का वेग, इसके उत्सर्जन के वेग से स्वतंत्र, हमेशा स्थिर या अचर होता है। इस पूर्वाधार पर बहुत बड़ी संख्या में वे युगान्तरकारी भौतिक निष्कर्ष निकाले गए, जिन्हें सामान्यतः "सापेक्षिकीय" कहा जाता है। अपने चौथे शोधपत्र में प्रतिपादित आइन्स्टीन का यह निष्कर्ष सभी पूर्व धारणाओं को उलट-पुलट कर नाभिकीय भौतिकी की नई आधारशिला सिद्ध हुआ कि किसी पिण्ड का द्रव्यमान उसकी ऊर्जा का समानुपातिक होता है और इस समानुपातिकता का नियतांक प्रकाश की गति का वर्ग फल होता है ( $E=mc^2$ )।

दिक् और काल के एकीकरण की अवधारणा ने न्यूटोनियन यांत्रिकी को बीते युग की चीज बना दिया। 1915 में सापेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त का सामान्यीकरण करते हुए आइन्स्टीन ने सापेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त विकसित किया और न्यूटोनियन यांत्रिकी के युग का निर्णायक रूप से अवसान हो गया। क्लासिकीय भौतिकी से निर्णायक प्रस्थान का यह दूसरा चरण था। सापेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, जिसके अनुसार, द्रव्यमान को दिक्-काल की वक्रता के रूप में देखा जाता है। यानी सामान्य सापेक्षिकता सिद्धान्त दिक्-काल की वक्रता और गुरुत्वाकर्षण की शक्तियों की क्रिया को एक मानता है। यह इस पूर्वधारणा पर आधारित है कि चतुर्आयामी दिक्-काल सातत्य, जिसमें गुरुत्वाकर्षण की शक्तियाँ काम करती हैं, अयूक्लीडीय ज्यामिति के सहसम्बन्धों के अधीन होता है। आइन्स्टीन चतुर्आयामी दिक्-काल में ज्यामितीय सहसम्बन्धों के यूक्लीडीय सहसम्बन्धों से विचलन को ही दिक्-काल की वक्रता मानते थे और उसे ही द्रव्यमान के रूप में देखते थे। 1919 के सूर्यग्रहण अभियान से प्राप्त आँकड़ों ने आइन्स्टीन के इस सिद्धान्त की प्रायोगिक धरातल पर पुष्टि कर दी, जब यह पाया गया कि किसी सीधी रेखा के 'प्रोटोटाइप' के रूप में तारों से आती प्रकाश की किरणें सूर्य के निकट गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में मुड़कर वक्र हो जाती हैं।

यहाँ यह उल्लेख दिलचस्प और प्रासंगिक है कि सापेक्षिकता सिद्धान्त के दार्शनिक निष्कर्ष मार्क्स-एंगेल्स द्वारा निरूपित द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की मूल स्थापनाओं की पुष्टि करते हैं और उन्हें समृद्ध बनाते हैं। यह सिद्धान्त दिक्-काल अन्तराल की एकलित अवधारणा के माध्यम से दिक् और काल के बीच के अटूट सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। साथ ही, यह भौतिक गति और उसके अस्तित्व के दिक्-काल रूपों के बीच के अटूट सम्बन्धों को भी प्रदर्शित करता है। पदार्थ की गति की विशेषताओं (काल का “धीमा होना” और दिक् की “वक्रता”) पर आश्रित दिक्-काल के गुणों की व्याख्या ने निरपेक्ष दिक् और काल के सम्बन्ध में क्लासिकीय भौतिकी की अवधारणाओं की संकीर्णता स्पष्ट कर दी और यह भी स्पष्ट कर दिया कि दिक्-काल की अवधारणाओं को गतिशील पदार्थ की अवधारणा से पृथक नहीं किया जा सकता। सापेक्षिकता सिद्धान्त क्लासिकीय यांत्रिकी का युक्तियुक्त सामान्यीकरण बन गया। उसने क्लासिकीय यांत्रिकी के सिद्धान्तों को प्रकाश के वेग के समीप पहुँचते वेगों से गतिमान पिण्डों के क्षेत्र तक विस्तारित कर दिया। यँ कहें कि सापेक्षिकता सिद्धान्त क्लासिकीय यांत्रिकी की तुलना में यथार्थ का अधिक सटीक परावर्तन है।

पूँजीवादी दर्शन की प्रत्ययवादी या भाववादी (आइडियलिस्ट) और प्रत्यक्षवादी (पॉजिटिविस्ट) धाराओं ने सापेक्षिकता सिद्धान्त की निष्पत्तियों को विकृत करते हुए इसे अपने इस दावे को पुष्ट करने के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश की कि विज्ञान का मूल चरित्र मनोगत (सब्जेक्टिव) होता है तथा भौतिक प्रक्रियाएँ प्रेक्षण पर निर्भर करती हैं। यथार्थ की निरपेक्षता की अस्वीकृति को उन्होंने यथार्थ के वस्तुगत चरित्र की अस्वीकृति में बदल दिया और इस तरह सापेक्षिकता सिद्धान्त को दार्शनिक सापेक्षवाद (रिलेटिविज़्म) के साथ उलझा दिया। इस मायने में आइन्स्टीन की अवस्थिति सुस्पष्ट भौतिकवादी थी। काण्ट के क्लासिकीय जर्मन प्रत्ययवाद में निहित अनुभवनिरपेक्षता के वह पहले से ही प्रखर आलोचक थे। प्रख्यात फ्रांसीसी गणितज्ञ प्वाइंकारे (जो 1905 में विशेष सापेक्षिकता सिद्धान्त की कुछ निष्पत्तियों तक स्वतंत्र रूप से आइन्स्टीन के साथ-साथ पहुँचे थे) और कुछ अन्य लोगों ने जब यह कहा कि वैज्ञानिक सत्य “सोपाधिक” (कण्डीशनल) होता है तो आइन्स्टीन ने उनका कड़ा विरोध किया और संसार के वस्तुगत तथा ज्ञेय होने में तथा प्रकृति की सभी क्रियाओं की कारणात्मक परस्पर निर्भरता में अपना दृढ़ विश्वास प्रकट किया। आस्ट्रियाई भौतिकवादी एवं अर्न्स्ट माख भी वस्तुओं को “संवेदनों का समुच्चय”, संकल्पनाओं को “संवेदनाओं के समुच्चय” का प्रतीक



और विज्ञान की प्राकल्पनाओं का योग मानता था और इसकी जगह प्रत्यक्ष पर्यावलोकन को स्थापित करने की बात करता था। माख के इस मनोगत प्रत्ययवाद और आलोचनात्मक अनुभववाद की सुसंगत आलोचना लेनिन ने अपनी कृति ‘भौतिकवाद तथा आलोचनात्मक अनुभववाद’ में प्रस्तुत की थी। आइन्स्टीन हालाँकि शुरू में माख से प्रभावित थे, लेकिन बाद में, माखवाद को उन्होंने दृढ़तापूर्वक ठुकरा दिया और 1920 में माख को एक “घटिया दार्शनिक” कहा।

क्वाण्टम यांत्रिकी की प्रत्यक्षवादी व्याख्या (खासकर कोपेनहेगेन स्कूल के प्रवर्तक एवं अनुयाई वैज्ञानिकों द्वारा) का भी आइन्स्टीन ने पुरजोर विरोध किया और एक भौतिकवादी अवस्थिति अपनाई। लेकिन यह बहस न केवल वैज्ञानिक, बल्कि दार्शनिक स्तर पर भी एक जटिल बहस थी, जिससे जुड़े कई मूलभूत प्रश्नों का उत्तर तब आइन्स्टीन के पास भी नहीं था और उनकी तर्क-प्रणाली के अन्तरिम विन्यास में कई बातें अधूरी और गुलत भी थीं। क्वाण्टम यांत्रिकी का विषय-केंद्र प्रकृति की सूक्ष्म परिघटनाओं का अध्ययन था। पूरी बीसवीं शताब्दी के दौरान क्वाण्टम सिद्धान्त के सही-सटीक होने के प्रमाण रोज-बरोज मिलते रहे।

आज क्वाण्टम यांत्रिकी ने न केवल भौतिकी, रसायन और जैविकी में परिघटनाओं की व्यापक परिधि का विज्ञान सम्मत स्पष्टीकरण सम्भव बना दिया है, बल्कि वह इंजीनियरिंग की एक शाखा भी बन गई है, लेकिन इस क्रान्तिकारी सिद्धान्त के दार्शनिक गूढ़ार्थों पर बहस-विवाद आज भी जारी हैं। कहा जा सकता है कि क्वाण्टम यांत्रिकी ने सूक्ष्म जगत की गति के जिन रूपों से परिचय कराया, उसका लाभ उठाकर अभूतपूर्व वैज्ञानिक-तकनीकी प्रगति हासिल कर लेने में तो सफलता मिल गई, लेकिन उस गति की बुनियादी नियम संगति को आज भी बहुत थोड़े अंश में ही समझा जा सका है।

“जब भी नैतिकता धर्मशास्त्र पर आधारित होगी, जब भी अधिकार किसी दैवी सत्ता पर निर्भर होंगे, तो सबसे अनैतिक, अन्यायपूर्ण, कुख्यात चीज़ें सही ठहरायी जा सकती हैं और स्थापित की जा सकती हैं।”

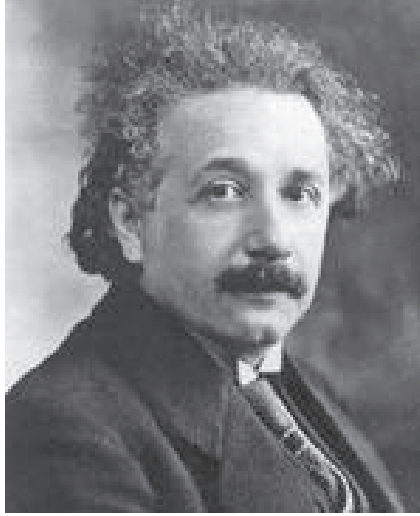
**लुडविग फायरबाख (जर्मन दार्शनिक, 1804-1872)**

“जब विवेक सो जाता है, तब राक्षस पैदा होते हैं।”

**फ्रांसिस्को द गोया (प्रख्यात स्पेनी चित्रकार, 1746-1828)**

क्वाण्टम यांत्रिकी के अनुसार किसी घटना या परिणाम की सटीक भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, बल्कि केवल उसकी प्रायिकता (प्रोबेबिलिटी) बताई जा सकती है। इस स्थापना की भौतिकवादी व्याख्या वैज्ञानिक सत्य के अवगाहन की प्रक्रिया के और अधिक द्वंद्वत्मक हो जाने के रूप में की जाती है, जहाँ पर्यवेक्षण के सूक्ष्म स्तर पर निश्चितता और अनिश्चितता का द्वंद्व (घटना या परिणाम की प्रायिकता के रूप में) मौजूद रहता है, लेकिन इस बात को भी लगातार ध्यान में रखना होगा कि पर्यवेक्षण स्वयं ज्यादा से ज्यादा सूक्ष्म धरातल पर उतरता जाता है। यानी क्वाण्टम यांत्रिकी यांत्रिक निर्धारणवाद का खण्डन करता है, न कि कारण-कार्य सम्बन्ध या कारणिक निर्धारणवाद (कॉजल डेटरमिनिज़्म) का। क्वाण्टम यांत्रिकी के अनुसार, अन्योन्य क्रिया करने वाली वस्तुओं की प्रणाली में सक्रिय हस्तक्षेप के बिना अनुसन्धानकर्ता को उसका पर्याप्त ज्ञान नहीं हो सकता। कोपेनहेगेनपंथ के वैज्ञानिकों ने इस स्थापना की प्रत्यक्षवादी व्याख्या की। उन्होंने सूक्ष्म जगत के यथार्थ को केवल संज्ञान और मापन की प्रक्रिया का प्रतिफल बताया, “पर्यवेक्षक” की भूमिका की गलत व्याख्या की तथा “कारणता के धराशायी होने” और “इलेक्ट्रॉन की स्वतंत्र इच्छा” जैसे दावों तक जा पहुँचे। इस संदर्भ में भौतिकवादी अवस्थिति यह है कि क्वाण्टम यांत्रिकी की यह स्थापना विषय (ऑब्जेक्ट) और विषयी (सब्जेक्ट) के बीच, वस्तुगत पहलू और मनोगत पहलू के बीच, पहले के प्राथमिक और दूसरे के द्वितीयक होने के सिद्धान्त का खण्डन नहीं करती, बल्कि इनके अन्तर्सम्बन्धों की घनिष्ठता एवं संश्लिष्टता को और अधिक बारीकी के साथ उजागर करती है। क्वाण्टम यांत्रिकी सहित सम्पूर्ण भौतिकी के उत्तरवर्ती विकास ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते यह सिद्ध कर दिया कि अभी भी “भौतिकी की आधारभूत भौतिकवादी भावना” (क्ला. ई. लेनिन : “भौतिकवाद और अनुभववादी आलोचना”) का पलड़ा ही भारी है। लेकिन आइन्स्टीन के समय स्थिति ऐसी नहीं थी। चूँकि आइन्स्टीन एक सुसंगत द्वंद्वत्मक भौतिकवादी दार्शनिक नहीं थे और चूँकि क्वाण्टम यांत्रिकी अभी प्रायोगिक सत्यापन के प्रारम्भिक स्तर पर थी, इसलिए आइन्स्टीन क्वाण्टम यांत्रिकी की प्रत्यक्षवादी व्याख्याओं का विरोध करते हुए इस अतिवादी निष्कर्ष तक जा पहुँचे कि क्वाण्टम यांत्रिकी के सिद्धान्त विसंगतियों से भरे हुए हैं। धीरे-धीरे वह इस धारणा से तो मुक्त हुए लेकिन इतना वह अंत तक मानते रहे कि यह एक अधूरा सिद्धान्त है और एक मायने में अपने पूर्वाग्रहों के बावजूद, उनकी यह धारणा सही भी कही जा सकती है।

1926 तक क्वाण्टम सिद्धान्त और सापेक्षिकता का विशेष सिद्धान्त अपने अलग-अलग प्रायोगिक सत्यापनों के बावजूद



एक-दूसरे से सामंजस्य नहीं रखते थे। उस समय की क्वाण्टम यांत्रिकी परमाणु स्तर की जिन परिघटनाओं की व्याख्या कर रही थी, उनमें सूक्ष्म कणों की गति प्रकाश की गति से बहुत धीमी थी और इसलिए उनकी व्याख्या और उनसे जुड़े प्रयोगों के लिए दिक्-काल की क्लासिकी अवधारणा काफी थी। लेकिन कण-भौतिकी (पार्टिकल फिजिक्स) के उद्भव और विकास के साथ ही सूक्ष्म जगत के अधिक ऊर्जावान रूपों से प्रायः प्रकाश की गति के निकट की गति वाले सूक्ष्म कणों से वास्ता पड़ा तो गैर-सापेक्षिक क्वाण्टम यांत्रिकी की सीमाएँ सामने आ गईं। इस समस्या के समाधान के लिए विशेष सापेक्षिकता सिद्धान्त के साथ क्वाण्टम यांत्रिकी के मेल के प्रयास 1928 में पॉल डिराक द्वारा एक ‘क्वाण्टम फील्ड थियरी’ के रूप में सापेक्षिक क्वाण्टम यांत्रिकी विकसित करने के साथ शुरू हुए, जिन्हें 1949 में रिचर्ड फाइनमैन, जूलियन श्विंगर और सिन इतिरो टोमोनागा के प्रयोगों ने तार्किक परिणति तक पहुँचाया।

लेकिन आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षिकता सिद्धान्त के साथ क्वाण्टम यांत्रिकी का मेल कर पाना अभी आज तक सम्भव नहीं हो पाया है। चूँकि सामान्य सापेक्षिकता सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त ही आज का प्रमाणित गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त है, अतः कहा जा सकता है कि अभी तक गुरुत्वाकर्षण का क्वाण्टम सिद्धान्त मौजूद नहीं है। यही आज की सैद्धान्तिक भौतिकी का केन्द्रीय एजेण्डा है। चूँकि इस सिद्धान्त के खोज लिए जाने के बाद प्रकृति के चार मूल बलों के एकीकरण का क्वाण्टम सिद्धान्त पूरा हो जाएगा, इसीलिए वैज्ञानिक इसे “सबकुछ का सिद्धान्त” (थियरी ऑफ एवरीथिंग) का नाम दे रहे हैं। क्वाण्टम यांत्रिकी के प्रति अपनी आशंकाओं-पूर्वाग्रहों के चलते आइन्स्टीन प्रिंसटन के उच्च अध्ययन संस्थान में काम करते हुए, गत शताब्दी के चौथे-पाँचवें दशक के दौरान भौतिकी की मुख्य धारा में काफी हद तक अलग-थलग पड़ गए थे। गुरुत्वाकर्षण और विद्युत चुम्बकत्व के एकीकृत सिद्धान्त की खोज के उनके प्रयास तब सफल नहीं हो सके थे, लेकिन यह उन्हीं व्यापकतर विजन था, जिसने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर अब तक की सैद्धान्तिक भौतिकी का एजेण्डासभी मूल बलों के एकीकरण के सिद्धान्त की खोज के रूप में तय किया है। निश्चित ही अपनी असफलताओं में भी आइन्स्टीन उतने ही महान थे।

आइन्स्टीन जीवन भर अविराम वैज्ञानिक शोध-कार्य में रत रहे। उन्होंने तीन सौ से भी अधिक शोध-निबन्ध लिखे, जो अपने आप में एक कीर्तिमान है। साथ ही दार्शनिक विषयों में भी उनकी रुचि उसी समय से थी, जब बारह वर्ष की उम्र में उनके

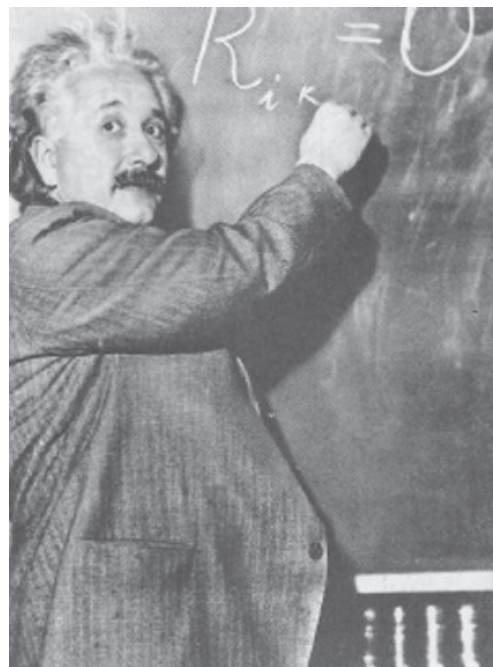
पारिवारिक मित्र मैक्स तालमुद ने, जो एक दार्शनिक और गणितज्ञ थे, इम्मैनुअल काण्ट की कृति 'विशुद्ध तर्कणा की समालोचना' से उनका परिचय कराया था। प्राकृतिक परिघटनाओं के अध्ययन ने आइन्स्टीन की विश्व दृष्टि को क्रमशः ज्यादा से ज्यादा सुसंगत भौतिकवादी बनाने का काम किया था, लेकिन चूँकि सामाजिक अध्ययन और प्रयोग उनका मुख्य क्षेत्र नहीं था, इसलिए वह अपनी विश्व दृष्टि को राजनीतिक-सामाजिक क्षेत्र में सुसंगत ढंग से लागू नहीं कर सके और समाजवाद तथा तत्कालीन सोवियत संघ के अन्तर्गत जनवाद और नौकरशाही के विशेषधिकारों को लेकर वह सदैव शंकालु रहे। लेकिन आनुभविक स्तर पर वह अंधराष्ट्रवाद, सैन्यवाद, फासीवाद, साम्राज्यवादी युद्ध और हर तरह के नस्लवादी-रंगभेदवादी उत्पीड़न का जीवन पर्यन्त जमकर विरोध करते रहे और मानवाधिकार एवं नागरिक स्वतंत्रता के पक्ष में लगातार दृढ़तापूर्वक आवाज बुलन्द करते रहे। उनका मानना था कि जब तक राष्ट्रों की सम्प्रभु सत्ताएँ बनी रहेंगी, तब तक दुनिया में युद्ध लाजिमी तौर पर होते रहेंगे, इसलिए विश्व शान्ति और निश्शस्त्रीकरण के लिए उन्होंने एक विश्व सरकार की स्थापना का यूटोपियाई विकल्प प्रस्तुत किया और इसके लिए प्रयास भी किए, जिन्हें लाजिमी तौर पर असफल होना ही था। अपने जीवन के अन्तिम दशक में उनके विचारों में महत्वपूर्ण बदलाव आ रहे थे। मंदी, बेरोजगारी, भुखमरी, असमानता और युद्धों के साथ-साथ समाज में बढ़ते अलगाव का मूलभूत कारण वह पूँजीवादी उत्पादन एवं विनिमय प्रणाली की अराजकता में तथा मुनाफे की गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा में देखने लगे थे तथा यह मानने लगे थे कि इसका एकमात्र विकल्प समाजवाद ही है। अपनी इन प्रस्थापनाओं को उन्होंने 1949 में 'समाजवाद ही क्यों?' नामक प्रसिद्ध लेख में प्रस्तुत किया जो पॉल स्वीजी द्वारा निकाली जाने वाली मार्क्सवादी पत्रिका, 'मंथली रिव्यू' के प्रवेशांक में प्रकाशित हुआ था। इससे भी पहले 1935-36 में 'विज्ञान और समाज' शीर्षक अपने निबन्ध में उन्होंने लिखा था कि पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत हर प्रौद्योगिक विकास अनिवार्यतः बेरोजगारी और आवर्ती संकटों को जन्म देता है तथा आधुनिक शस्त्र और संचार के साधन मिलकर शरीर और आत्मा को एक केन्द्रीय सत्ता का बन्धुआ बना देते हैं।

आइन्स्टीन केवल प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों के प्राणी नहीं थे। कई शताब्दियों में पैदा होने वाला एक चिंतक-वैज्ञानिक होने के बावजूद वह रोजमर्रा के सामाजिक-राजनीतिक जीवन

की समस्याओं से गहरा सरोकार रखते थे। किताबी कीड़ों और अपने आविष्कारों की परिणतियों से असम्युक्त वैज्ञानिकों की जमातों के वह कटु आलोचक थे। न्याय के पक्ष में जारी संघर्ष में वह उस समय से ही भागीदारी करते रहे, जब वह एक वैज्ञानिक के रूप में अपना जीवन शुरू कर रहे थे और गहनतम शोध के दौर से गुजर रहे थे।

उनके जर्मनी छोड़कर स्विस् नागरिक बनने के पीछे भी मूल कारण जर्मन सैन्यवाद का विरोध था। 1917 में उन्होंने जिस समय जर्मन सैन्यवाद के विरुद्ध जर्मन बुद्धिजीवियों के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किया, उस समय वह वहाँ के 'कैसर विल्हेल्म सैद्धान्तिक भौतिकी संस्थान' के निदेशक थे। पहले विश्वयुद्ध में जर्मनी की भूमिका का मुखर विरोध करने के कारण बर्लिन पुलिस ने उनका नाम काली सूची में डाल रखा था। वह उन चार वैज्ञानिकों में से एक थे जिन्होंने युद्ध के विरुद्ध तथा युद्धों के उन्मूलन के लिए एक एकीकृत यूरोप की स्थापना के लिए जारी 'यूरोपीय लोगों के घोषणापत्र' पर हस्ताक्षर किया था। इसी उद्देश्य से गठित 'न्यू फादरलैण्ड लीग' की भी आइन्स्टीन ने सदस्यता ली थी। उन्होंने युद्ध की समाप्ति और जर्मनी में गणतंत्र की स्थापना का स्वागत किया और छात्रों की एक सभा में भाषण दिया, जिसके बाद, कम्युनिस्टों से मतभेदों के बावजूद, जर्मन पुलिस उन्हें रैडिकल समाजवादी मानने लगी थी।

1919 में विश्वयुद्ध में जर्मनी की पराजय और जर्मन मजदूर आंदोलन के निर्मम दमन एवं बिखराव के बाद वहाँ फासीवाद के विकास की प्रक्रिया शुरू हुई, जो 1933 में हिटलर के सत्तासीन होने के बाद अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुँची। आइन्स्टीन इस दौरान फासीवाद के युद्धोन्माद और नागरिक दमन का विरोध करते हुए लगातार शान्तिवाद और युद्धों की समाप्ति के लिए एक विश्व सरकार के पक्ष में प्रचार करते रहे। हालाँकि उनके द्वारा प्रस्तुत समाधान समस्या की जड़ साम्राज्यवाद और पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में न देख पाने के कारण अव्यावहारिक और काल्पनिक ही था, लेकिन फिर भी नात्सी सत्ता उन्हें वामपंथी और "यहूदी देशद्रोही" मानकर उनपर कड़ी नजर रखने लगी। उनके सिद्धान्तों को "बोल्शेविक षड़यंत्र" कहा जाने लगा। 1939 में, यहूदी आबादी के व्यापक दमन की चपेट में ख्यातिलब्ध बुद्धिजीवी भी आने लगे थे। आइन्स्टीन (दुबारा) जर्मन नागरिकता छोड़कर 1933 से ही अमेरिका के प्रिंसटन स्थित उच्च अध्ययन संस्थान में काम कर रहे थे। 1939 में उन्होंने अमेरिकी नागरिकता ले ली। लेकिन वहाँ भी उनका दम घुटने लगा। उन्होंने देखा कि किस तरह अमेरिका ने स्पेन



में गणतंत्रवादी शक्तियों को कुचलने में मदद की, फासीवादी फ्रांको का समर्थन किया और सोवियत संघ के विरुद्ध षडयंत्र किए। स्वयं अमेरिका के भीतर अश्वेत और लातिनी मूल के मजदूरों व आम आदमी का दमन भी वहाँ के बुर्जुआ जनवाद की असलियत उघाड़ रहा था और आइन्स्टीन उसके विरुद्ध भी खुलकर आवाज उठा रहे थे। लेकिन चूँकि वह फासीवाद को पूरी दुनिया के लिए सबसे बड़ा खतरा मान रहे थे और जर्मनी द्वारा परमाणु बम के विकास का उन्हें अंदाजा हो गया था इसलिए परमाणु बम विकास परियोजना के पक्ष में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा। आइन्स्टीन इस बम को सिर्फ शक्ति सन्तुलन का एक साधन मानते थे, लेकिन फासीवादी धुरी की पराजय आसन्न होने के बावजूद, पूरी दुनिया पर चौधराहट जमाने की नीयत से अमेरिका द्वारा हिरोशिमा और नागासाकी पर बम गिराए जाने की घटना से आइन्स्टीन एकदम विचलित हो गए। विश्व शान्ति की मुहिम में वह और भी अधिक जोर-शोर से सक्रिय हो गए, लेकिन साम्राज्यवाद के चरित्र के ज्यादा से ज्यादा नंगा होते जाने के साथ ही उनकी चिन्तन-प्रक्रिया में अब महत्वपूर्ण बदलाव आ रहे थे और युद्धों तथा तमाम मानवीय आपदाओं की जड़ अब वह पूँजीवादी प्रणाली में देखने लगे थे। हालाँकि सोवियत संघ के बारे में उनकी शंकाएँ थीं और समाजवादी संक्रमण की प्रकृति एवं समस्याओं का अध्ययन नहीं होने के कारण वह समाजवाद के अन्तर्गत नौकरशाही के निरंकुश अधिकार सम्पन्न होने के बारे में चिन्तित रहते थे, फिर भी पाँचवे दशक के उत्तरार्द्ध तक वह मानने लगे थे कि पूँजीवाद का एकमात्र तार्किक और सम्भव विकल्प समाजवाद ही है।

यह शीतयुद्ध का दौर था जब अमेरिका कम्युनिज़्म-विरोध के कुख्यात मैकार्थीवादी उन्माद की गिरफ्त में था। तमाम ख्यातिलब्ध बुद्धिजीवियों तक को वामपंथी होने के आरोप में गिरफ्तार किया जा रहा था, तरह-तरह से प्रताड़ित किया जा रहा था और गायब तक करवा दिया जा रहा था। आइन्स्टीन पर भी निगाह थी, लेकिन वह निर्भीकतापूर्वक वामपंथियों के दमन के विरुद्ध तथा अश्वेतों और आम आबादी के नागरिक आजादी के लिए आवाज उठा रहे थे और अमेरिकी आक्रामक सैन्यवाद की निन्दा भी कर रहे थे। जूलियस और इथेल रोजेनबर्ग नामक वैज्ञानिक दम्पति को वामपंथी होने के कारण जब सोवियत

जासूस बता कर फाँसी की सजा दी गई तो आइन्स्टीन ने इसका जमकर विरोध किया था। उन्होंने तमाम बुद्धिजीवियों का आह्वान किया कि वे मैकार्थी की 'आन्तरिक सुरक्षा समिति' के सामने गवाही देने के लिए न जाएँ। आइन्स्टीन फासीवाद और विश्वयुद्ध के दौर में यहूदियों के अभूतपूर्व नरसंहारों से अन्दर तक विचलित थे और इजराइल में एक यहूदी होमलैण्ड के निर्माण के प्रबल समर्थक थे, लेकिन वह एक अविभाजित फिलिस्तीन में अरबों-यहूदियों के सहअस्तित्व के समर्थक थे और इसकी विफलता के पीछे साम्राज्यवादियों की 'बाँटो और राज करो' की नीति को मुख्य कारण मानते थे।

अप्रैल, 1955 में अपनी मृत्यु के समय तक आइन्स्टीन अमेरिकी सरकार और साम्राज्यवादियों के लिए अपने विचारों के चलते लगातार परेशानी का सबब बने रहे। अपनी विश्वव्यापी प्रसिद्धि और लोकप्रियता के चलते ही शायद वह जेल और यंत्रणा से बचे रह सके। यह वर्ष सापेक्षिकता सिद्धान्त का शताब्दी वर्ष होने के साथ ही आइन्स्टीन का पचासवाँ पुण्य तिथि वर्ष भी है। उनका जीवन हमें लगातार अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रह कर निर्भीक आचरण करने और अपने बौद्धिक कार्यों को लगातार सामाजिक सरोकारों से जोड़ने की शिक्षा देता है।

आखिर क्या कारण था जो आइन्स्टीन को लगातार धारा के विरुद्ध खड़े होकर और अधिकारी-सत्ताधारी जमातों के बीच अलोकप्रिय बनकर भी अपनी मान्यताओं पर डटे रहने और निर्भीकतापूर्वक न्याय और जनता के पक्ष में आवाज उठाते रहने के लिए प्रेरित करता था? शायद उनकी वैज्ञानिक स्पिरिट का मानवीय दायरों तक विस्तार ही वह मूल कारण था, जैसा कि बीसवीं शताब्दी में विज्ञान के अन्य शिखर पुरुष नील्स बोर ने उनके निधन पर श्रद्धांजलि देते हुए कहा था : "आइन्स्टीन के अवदान केवल विज्ञान के दायरे तक ही सीमित नहीं हैं। हमारे सबसे बुनियादी और अभ्यस्त अभिधारणाओं तक में से अब तक अदृष्ट अभिधारणाओं को देख लेने की उनकी प्रवृत्ति सभी लोगों को प्रत्येक राष्ट्रीय संस्कृति में अन्तर्निहित, गहराई से जड़ जमाएँ पूर्वाग्रहों और आत्म सन्तुष्टियों की शिनाख्त करने और उनके विरुद्ध संघर्ष करने के लिए एक नया प्रोत्साहन देती है।" आज भारत के युवाओं को भी इस नए प्रोत्साहन की सख्त जरूरत है और शायद सबसे अधिक जरूरत है।

## भगतसिंह ने कहा...



“क्रान्ति करना बहुत कठिन काम है। यह किसी एक आदमी की ताकत की वश की बात नहीं है और न ही यह किसी निश्चित तारीख को आ सकती है। यह तो विशेष सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से पैदा होती है और एक संगठित पार्टी को ऐसे अवसर को सम्भालना होता है और जनता को इसके लिए तैयार करना होता है। क्रान्ति के दुस्साध्य कार्य के लिए सभी शक्तियों को संगठित करना होता है। इस सबके लिए क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को अनेक कुर्बानियाँ देनी होती हैं।”

(‘नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र’ से)

# क्रान्तिकारी नवजागरण के तीन वर्ष

(23 मार्च 2005–28 सितम्बर 2008)

भगतसिंह और उनके साथियों की  
शहादत की 75वीं वर्षगाँठ  
और जन्मशताब्दी के तीन ऐतिहासिक  
वर्षों के दौरान  
नए जन मुक्ति संघर्ष की  
तैयारी के संकल्प और सन्देश के साथ  
क्रान्तिकारी छात्रों-युवाओं की देशव्यापी

## स्मृति संकल्प यात्रा

हम सभी सच्चे युवाओं का आह्वान करते हैं!  
हम तमाम जिन्दा लोगों को आवाज देते हैं!!  
हम तूफान के अग्रदूतों को आमंत्रित करते हैं!!!

- नौजवान भारत सभा
- दिशा छात्र संगठन

एक बार फिर  
महान शहीदों की स्मृतियों और विरासत से  
सँजोना है संकल्प और विवेक का ईधन  
और प्रज्ज्वलित करनी है  
नये संघर्षों की आग,  
भविष्य-स्वप्नों से ढालनी है इस्पाती मुक्ति परियोजनाएँ।  
उठो, देश के युवा शिल्पियों,  
चलो, जन-जीवन की कार्यशाला में  
गढ़ने के लिए  
स्वस्थ सकर्मक जीवन-रूपा से स्पन्दित यथार्थ।  
पूँजी की रक्तपिपासु सत्ता के विरुद्ध  
निर्णायक न्याय-युद्ध के सेनानियो,  
चलो प्रतीक्षारत जनता के बीच  
प्रबल चक्रवाती झंझा को आमंत्रण देते हुए।

इस देश के बहादुर इंसाफपसन्द नौजवानो,

हम तुम्हें महान शहीद और युवा विचारक क्रान्तिकारी भगतसिंह और उनके साथियों के सपनों के भारत के निर्माण के लिए, जन-मुक्ति के उनके सपने को साकार करने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। हमारा प्रबल आग्रह है कि इसे रोटी पर रक्त से लिखा निमंत्रण समझो। हमारी निष्ठा और संकल्प पर विश्वास करो और इस मुहिम में सहभागी बनने हमारे साथ आओ!

हमारे सहयात्री भाइयो, सहयोद्धा साथियो,

भगतसिंह और उनके साथियों की शहादत के 75 वर्ष पूरे होने को हैं। अब से लेकर अगले तीन वर्ष उस पीढ़ी के कई क्रान्तिकारियों के जन्मशताब्दी वर्ष होंगे। एक बार फिर इतिहास हमारे दिलो-दिमाग के दरवाजों पर दस्तक दे रहा है। क्या हम देश को यूँ ही चुपचाप इन क्रान्तिकारियों के खण्डित और अधूरे स्वप्नों की त्रासद तस्वीर बना देखते रहेंगे? क्या इस देश के युवा यूँ ही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे, अपने-अपने स्वार्थों के लिए समझौते करते हुए रीढ़विहीन केंचुए की तरह रेंगते रहेंगे, देश की तमाम सम्पदा की निर्मात्री अस्सी फीसदी आबादी पर बीस फीसदी लुटेरों, मुफ्तखोरों को सवारी गाँठते देखते रहेंगे और खुद इस या उस चुनावी मदारी का जमूरा बना स्वीकार करते रहेंगे? क्या हमारा देश देशी-विदेशी लूट का खुला चरागाह बना रहेगा और हम नशे की नींद सोते रहेंगे? कतई नहीं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि अत्याचार-अनाचार के इस घटाटोप के विरुद्ध नए सिरे से एक निर्णायक युद्ध छेड़ने के लिए और महान शहीदों के स्वप्नों को साकार करने के लिए संकल्प बाँधने वाले साहसी युवाओं की कमी नहीं है। बस जरूरत है, एक नई शुरुआत के लिए साहसिक पहलकदमी की। इसी पहलकदमी के लिए हम आपका आह्वान कर रहे हैं।

मार्च 2005 से भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की शहादत का 75वाँ वर्ष शुरू हो चुका है। यही जन-मुक्ति संघर्ष के कलम के सिपाही गणेशशंकर विद्यार्थी की शहादत का भी 75वाँ वर्ष है। इसी वर्ष 13 सितम्बर को भगतसिंह के साथी यतीन्द्रनाथ दास की शहादत की 75वीं वर्षगाँठ है और 27 फरवरी से चन्द्रशेखर आजाद की शहादत का 75वाँ वर्ष तथा 23 जुलाई से उनका जन्मशताब्दी वर्ष शुरू हो चुका है। इस वर्ष 18 अप्रैल को चटगाँव विद्रोह की 75वीं वर्षगाँठ थी। फरवरी 2006 में नौसेना विद्रोह के 60 वर्ष पूरे हो रहे हैं और मई 2007 में भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के 150 वर्ष पूरे हो जाएँगे। 28 सितम्बर 2006 से भगतसिंह के जन्म के 100वें वर्ष की शुरुआत हो जाएगी। 28 सितम्बर 2007 से उनके जन्मशताब्दी वर्ष की ऐतिहासिक शुरुआत होगी जिसका समापन सितम्बर 2008 में होगा। यह अवसर इस देश के नौजवानों के लिए अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी की याददिवानी

का अवसर है। साथियों, 23 मार्च 2005 से लेकर 28 सितम्बर 2008 के बीच के इन तीन वर्षों को, एक नई क्रान्ति का सन्देश पूरे देश के जन-जन तक पहुँचाने वाली स्मृति संकल्प यात्राओं के माध्यम से एक क्रान्तिकारी नवजागरण के तीन ऐतिहासिक वर्ष बना देने के लिए हम कृतसंकल्प हैं। इस मुहिम में भागीदारी के लिए हम आपको आमंत्रित करते हैं।

भगतसिंह की वीरता और कुर्बानी से तो पूरा देश परिचित है लेकिन इस देश के पढ़े-लिखे नौजवान तक यह नहीं जानते कि 23 वर्ष की छोटी सी उम्र में फांसी का फन्दा चूमने वाला वह जाँबाज नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी विचारक था! यह हमारी जनता का दुर्भाग्य है और सत्ताधारियों की साजिश का नतीजा है। अब यह हमारा काम है कि हम भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाएँ, उनकी स्मृति से प्रेरणा लें और उनके विचारों के आलोक में अपने देशकाल की परिस्थितियों को समझकर नई क्रान्ति की दिशा तय करें और फिर उस राह पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें।

भगतसिंह और उनके साथियों ने अपने लेखों, बयानों और पत्रों में साफ शब्दों में और बार-बार यह कहा था कि उनका लक्ष्य केवल ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की औपनिवेशिक गुलामी का खात्मा ही नहीं है, बल्कि उनकी लड़ाई साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद के विरुद्ध लम्बे ऐतिहासिक संघर्ष की एक कड़ी है। उन्होंने उसी समय आगाह किया था कि कांग्रेस व्यापक आम आबादी की ताकत का इस्तेमाल करके हुकूमत की बागडोर पूँजीपतियों के हाथों में सौंपना चाहती है और उसकी लड़ाई का अन्त साम्राज्यवाद से समझौते के रूप में ही होगा। उन्होंने स्पष्ट किया था कि क्रान्तिकारी 10 फीसदी थैलीशाहों के लिए नहीं, बल्कि 90 फीसदी आम मेहनतकश जनता के लिए आजादी और जनतंत्र हासिल करना चाहते हैं और साम्राज्यवाद-सामन्तवाद के खात्मे के बाद पूँजीवाद को भी नष्ट करके एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था कायम करना चाहते हैं जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के ढाँचे पर आम मेहनतकश जनता काबिज हो।

क्रान्तिकारियों का यह सपना साकार नहीं हो सका। एक अधूरी, खण्डित आजादी के बाद, साम्राज्यवाद से साठगाँठ किये हुए देशी पूँजीवाद के जालिम शासन के जुवे को ढोते-ढोते आधी सदी से अधिक समय बीत चुका है। आजादी और जनतंत्र के सारे छल-छद्म उजागर हो चुके हैं। मुट्ठीभर मुफ्तखोरों की जिन्दगी में चमकते उजाले के बरक्स आम लोगों की जिन्दगी का अँधेरा गहराता चला गया है। सभी चुनावबाज पूँजीवादी पार्टियों के साथ ही अपने लक्ष्य से विश्वासघात कर चुकी नकली वामपंथी पार्टियों का गन्दा चेहरा भी नंगा हो चुका है। अब रास्ता सिर्फ एक है। विकल्प सिर्फ एक है। हमें भगतसिंह के दिखाये रास्ते पर आगे बढ़ने का संकल्प लेना ही होगा। इसीलिए हम भारत के नौजवानों का आह्वान करते हैं : **“भगतसिंह की बात सुनो। नई क्रान्ति की राह चलो।”**

भगतसिंह के विचार क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह हमें दिशा दिखला रहे हैं। अब गाँव-गाँव और शहर-शहर में और तमाम कालेजों-विश्वविद्यालयों में नौजवानों और छात्रों को नये सिरे से अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे। उन्हें चुनावबाज मदारियों का पिछलग्गू बनने से बचना होगा। इसके बाद, जैसा कि जेल की कालकोठरी से युवाओं को भेजे गये अपने सन्देश में भगतसिंह ने कहा था, छात्रों-नौजवानों को कारखानों के मजदूरों और गाँव की झोपड़ियों तक जाना होगा और तमाम मेहनतकशों को संगठित करना होगा। यही सन्देश लेकर हम इस देश के हर जीवित युवा हृदय तक पहुँचना चाहते हैं।

साथियों! बैठे-बैठे सोचते रहने से तो हर राह मुश्किल लगती है। राह की कठिनाइयों को यात्रा शुरू करने के बाद ही दूर किया जा सकता है। भगतसिंह और उनके साथियों का सपना एक जलता हुआ प्रश्न बनकर हमारी आँखों में झोंक रहा है। उनकी विरासत हमें ललकार रही है और भविष्य हमें आवाज दे रहा है। एक जिन्दा कौम के नौजवान इसकी अनसुनी नहीं कर सकते। हम एक नई क्रान्ति की तैयारी के लिए, एक नये क्रान्तिकारी नवजागरण का सन्देश पूरे देश में फैला देने के लिए आपका आह्वान करते हैं।

क्रान्तिकारी अभिवादन सहित,  
नौजवान भारत सभा  
दिशा छात्र संगठन

## स्मृति संकल्प यात्रा के इन तीन वर्षों के दौरान

क्रान्तिकारी छात्रों-नौजवानों की यात्रा टोलियाँ गाँव-गाँव और शहर-शहर का दौरा करते हुए देश के अधिकतम हिस्से तक पहुँचने की कोशिश करेंगी, छात्रों-युवाओं और आम लोगों तक नई क्रान्ति का सन्देश पहुँचाएँगी और एकजुट होकर देशव्यापी, नये क्रान्तिकारी छात्र संगठन और नौजवान संगठन बनाने के लिए उनका आह्वान करेंगी।

ये यात्रा टोलियाँ सभी चुनावबाज़ पूँजीवादी और नकली वामपंथी पार्टियों तथा ट्रेडयूनियनों के धन्धेबाज़ों से छुटकारा पाकर नये क्रान्तिकारी जनसंघर्ष के लिए एकजुट और संगठित होने के लिए आम मेहनतकश जनता का आह्वान करेंगी।

गाँव-शहरों और कालेजों-विश्वविद्यालयों में नौजवानों और छात्रों के क्रान्तिकारी संगठन बनाने का काम भी साथ-साथ चलता रहेगा।

हमसफर बनने वाले नौजवानों को साथ लेकर ज़्यादा से ज़्यादा नई यात्रा टोलियाँ बनायी जाएँगी।

यात्रा टोलियों के साथ ही सचल सांस्कृतिक दस्ते भी देश के विभिन्न हिस्सों का दौरा करेंगे।

इस मुहिम के समर्थक नागरिकों के सहयोग से यात्रा टोलियों के आवश्यक व्यय के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर विभिन्न भारतीय भाषाओं में भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेजों का प्रकाशन और वितरण किया जाएगा। इसके साथ ही क्रान्तिकारी विचारों, क्रान्तिकारी इतिहास और देश की वर्तमान दुरवस्था के कारणों से परिचित कराने वाला साहित्य भी प्रकाशित और वितरित किया जायेगा। इस काम में राहुल फाउण्डेशन, परिकल्पना प्रकाशन, शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन और दस्तक प्रकाशन हमारे सहयोगी होंगे।

इस विशेष अवसर पर स्मृति चिन्हों के रूप में पोस्टर, कैलेण्डर, चित्र-कार्डों के सेट, डायरी आदि भी प्रकाशित किए जायेंगे।

शिक्षा संस्थानों और बौद्धिक सांस्कृतिक केन्द्रों में विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जायेगा।

स्मृति संकल्प यात्रा की लक्ष्यपूर्ति की दृष्टि से उपयोगी सुझावों के आधार पर अन्य कार्यक्रम भी लिये जा सकते हैं।

स्मृति संकल्प यात्रा के कार्यक्रमों में शामिल होने के लिए अथवा इसमें सहयोग करने के लिए आप इनमें से किसी भी समन्वय केन्द्र (कोऑर्डिनेशन सेंटर) पर व्यक्तिगत रूप से मिलकर या पत्र द्वारा सम्पर्क कर सकते हैं :

1. बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094 (मुख्य समन्वय केन्द्र)  
फोन: 011-55976788, मोबाइल: 92132-43755
2. 289-सी, श्रमिक कुंज, सेक्टर 66, नोएडा, फोन: 98712-52120
3. जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020, फोन: 0522-2786782
4. जनचेतना, 989, पुराना कटरा, मनमोहन पार्क, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, फोन: 0532-2461661
5. आह्वान कार्यालय, संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर-273001, फोन: 0551-241922
6. जनचेतना, प्राइमरी स्कूल के पास, भदईपुरा, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर, फोन: 05944-240580
7. पंकज, प्लॉट नं. 33, सेक्टर 15, सोनीपत, फोन: 98122-96194
8. अजयपाल, लुधियाना, फोन: 98550-57255

ईमेल: 1) smriti\_sankalp\_yatra@rediffmail.com 2) smriti\_sankalp\_yatra@yahoo.com

वेबसाइट : (निर्माणाधीन)

## यतीन्द्रनाथ दास की पुण्यतिथि के अवसर (13 सितंबर) पर विशेष 'इंकलाब जिन्दाबाद' का अर्थ

हम 'यतीन्द्रनाथ जिन्दाबाद' का नारा लगाते हैं। इससे हमारा अभिप्राय यह होता है कि उनके जीवन के महान आदर्शों तथा उस अथक उत्साह को सदा-सदा के लिए बनाए रखें जिसने इस महानतम बलिदानी को उस आदर्श के लिए अकथनीय कष्ट झेलने एवं असीम बलिदान करने की प्रेरणा दी। यह नारा लगाने से हमारी यह लालसा प्रकट होती है कि हम भी अपने आदर्शों के लिए ऐसे ही अचूक उत्साह को अपनाएँ और यही वह भावना है जिसकी हम प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार हमें 'इंकलाब' शब्द का अर्थ भी कोरे शाब्दिक रूप में नहीं लगाना चाहिए। ...क्रान्ति शब्द का अर्थ प्रगति के लिए परिवर्तन की एक भावना एवं आकांक्षा है। लोग साधारणतया जीवन की परम्परागत दशाओं के साथ चिपक जाते हैं और परिवर्तन के विचार मात्र से ही काँपने लगते हैं। यही वह अकर्मण्यता की भावना है जिसके स्थान पर क्रान्तिकारी भावना जागृत करने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अकर्मण्यता का वातावरण निर्मित हो जाता है और रूढ़िवादी शक्तियाँ मानव समाज को कुमार्ग पर ले जाती हैं। ये परिस्थितियाँ मानव समाज की उन्नति में गतिरोध का कारण बन जाती हैं। क्रान्ति की इस भावना से मनुष्य जाति की आत्मा स्थायी तौर ओत-प्रोत रहनी चाहिए, जिससे कि रूढ़िवादी शक्तियाँ मानव समाज की प्रगति की दौड़ में बाधा डालने को संगठित न हो सकें। यह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सदैव बदलती रहे और वह नयी व्यवस्था के लिए स्थान रिक्त करती रहे, जिससे कि यह आदर्श व्यवस्था संसार को बिगड़ने से रोक सके। यह है हमारा वह अभिप्राय जिसको हृदय में रखकर हम 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा बुलंद करते हैं।

(‘मॉडर्न रिव्यू’ के सम्पादक रामानंद चट्टोपाध्याय को लिखे गए भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के पत्र से।)

“हमारे युग की कला क्या है? न्याय की घोषणा, समाज का विश्लेषण, परिणामतः आलोचना। विचारसत्त्व अब कलातत्त्व में समा गया है। यदि कोई कलाकृति सिर्फ चित्रण के लिए ही जीवन का चित्रण करती है, यदि उसमें वह आत्मगत शक्तिशाली प्रेरणा नहीं है जो युग में व्याप्त भावना से निःसृत होती है, यदि वह पीड़ित हृदय से निकली कराह या चरम उल्लसित हृदय से फूटा गीत नहीं, यदि वह कोई सवाल या किसी सवाल का जवाब नहीं, तो वह निर्जीव है।”

-बेलिंस्की (रूसी दार्शनिक)

### घोषणापत्र : प्रपत्र 1

पत्रिका का नाम	- आह्वान कैम्पस टाइम्स
प्रकाशन का स्थान	- गोरखपुर
प्रकाशन अवधि	- त्रैमासिक
प्रकाशक/स्वामी का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर', कल्याणपुर, गोरखपुर
मुद्रक का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर', कल्याणपुर, गोरखपुर
संपादक का नाम	- अभिनव
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- बी-१००, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली

मैं, आदेश सिंह, एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

हस्ताक्षर  
आदेश सिंह  
प्रकाशक/मुद्रक/स्वामी

दिनांक : ३१.७.२००५

# होसे मारिया सिसों की पाँच कविताएँ

अनुवाद: चन्द्रमणि सिंह

## अँधेरी गहराइयों में

दफ़न कर देना चाहता है दुश्मन हमें  
जेलखाने की अँधेरी गहराइयों में  
लेकिन धरती के अँधेरे गर्भ से ही  
दमकता सोना खोद निकाला जाता है  
गोता मारकर बाहर लाया जाता है  
झिलमिलाता मोती  
सागर की अतल गहराइयों से।  
हम झेलते हैं यंत्रणा और अविचल रहते हैं  
और निकालते हैं सोना और मोती  
चरित्र की गहराइयों से  
ढला है जो लम्बे संघर्ष के दौरान।

(10 अप्रैल, 1978)

## वर्षा का आना

दम घोंटू गर्मी इकठ्ठा करती है  
गहरे काले बादलों को  
नीचे सब कुछ अँधेरे से ढँकती हुई  
लेकिन बिजली का गरजना-चमकना  
घोषणा करता है, वर्षा के दौरान  
उपज के एक नये मौसम की।

व्यापक हवाएँ और गहराती जलधाराएँ  
पर्वतों से उतरती हैं वेग से  
बेहद आत्मीय ढँग से

देती हैं सन्देश  
मैदानों में वर्षा के आगमन का।

पेड़ अपनी बाँहे उठाते हैं आकाश की ओर  
और नाचते हैं लयबद्ध गति में, हर्षातिरेक में  
झाड़ियाँ उठती हैं और अपनी आवाज मिलाती हैं  
पेड़ों के साथ  
हँसी और गीत के दौरान।

हवायें बुहार ले जाती हैं गिरे हुए पत्रों को  
और फसल कटे खेतों में चिंगारी भड़कती हैं  
लपटें उठती हैं और तेज करती हैं  
धरती की प्यास,  
अधीर है जो जलाघात के लिए।

(15 जून, 1978)

## मध्य मैदानी प्रदेश

मुझे प्यार है धान के खेतों के हरे-भरे विस्तार से,  
सूरज की रोशनी गिरती है जब उनपर  
उद्घाटित कर देती है  
स्वार्णिम दानों के रहस्य।  
मुझे प्यार है खेतों में दृढ़ता से तने खड़े गन्ने से,  
सूरज की रोशनी उनपर जब चोट करती है,  
उद्घाटित कर देती है  
उन सुनहरे लट्टों की मिठास  
मैदानों से बहती हवाएँ

होसे मारिया सिसों फिलिपींस की संघर्षरत कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक महासचिव हैं। वर्षों के जेल जीवन की यंत्रणाएँ भी उन्हें लक्ष्यविमुख नहीं कर सकीं। इस समय वे हालैण्ड में निर्वासित जीवन बिता रहे हैं, लेकिन फिर भी सतत सक्रिय हैं।

लाती हैं अपने साथ  
किसानों और फार्म मजदूरों के  
श्रम का संगीत।  
मुझे प्यार है सड़कों-कारखानों से  
उठते शोर से  
जब मजदूर मशीनों पर काम करते हैं।  
मुझे प्यार है नीले पर्वतों की उत्तुंगता से  
जो हर मेहनतकश को देता है  
उम्मीदों का पैगाम।

(15 अगस्त, 1978)

## विशाल बलूत

(कामरेड माओ त्से-तुङ को श्रद्धांजलि)

शीत ऋतु की विभीषिका में  
उन्नतशिर तना खड़ा है  
सौ वर्ष पुराना विशाल बलूत  
अनगिन मौसमों का साक्षी स्तम्भ।  
ग्रीष्म की तितलियों की  
भला क्या तुलना इस बलूत से  
और इस निष्ठुर शीत से?

वह जो जा चुका है  
लेकिन अनश्वर है जिसकी आत्मा

और सभी तरह के जादूगर जिसे  
वश में नहीं कर सकते अपने जादू के जोर से।  
उसके नाम के जादू को चुराने  
के अनुष्ठानों के लिए  
कभी-कभी बलूत की एक टहनी से  
गढ़ी जाती है उसकी आत्मा  
उसके दुश्मनों की छवि में।  
चर्मपत्रों पर अंकित हैं  
विश्वासघात के चुम्बन,  
पवित्रता को अपदूषित करने मंत्रोंच्चारों की भिनभिनाहटें  
और उसकी महान स्मृति के विरुद्ध  
अपकीर्ति की कल्पित कथाएँ।

उसके विचार और कर्म  
जब पीछा करते हैं शत्रुओं का  
तो वे भावी भीषण संघर्ष के लिए  
अभिप्रेरित जीवन्त शक्तियों के  
प्राणान्तक भय से हो जाते हैं आक्रान्त  
जैसे क्षितिज पर टकराते हैं  
प्रकाश और तिमिर  
और जैसे उत्कृष्ट और निकृष्ट  
अग्रसर होते हैं  
स्वयं को परिभाषित करने की ओर।

(26 दिसम्बर, 1993)

## जंगल है अब भी

## जादू के वश में...

अस्थिर-चित्र आत्माएँ और परियाँ  
छोड़ चुकी हैं पुरातन वृक्षों और लता-गुल्मों को,  
अंधी गुफाओं और छिपे टीलों को,  
काई-युक्त चट्टानों और फुसफुसाती जलधाराओं को,  
वक्र दुष्टात्मा और कृष्ण-पखेरू  
वंचित हो चुके हैं अपनी षड़यंत्रकारी शक्तियों से।

बीते युगों की अनिश्चितताएँ  
अब हठात् दिलों में नहीं जगातीं भय और आतंक  
जंगल में बिना किसी संशय के  
अब स्पन्दित होती है निश्चितता  
लकड़ी काटने की, सुअर और हिरन के शिकार की,  
फल बटोरने की, मधु-संचय की  
और यहाँ तक कि शतावरी के फूल चुनने की।

लेकिन जंगल है अब भी जादू के वश में  
हवाओं में एक नया स्तुति-गीत है;  
गहन हरीतिमा में एक नया जादू है,  
ऐसा ही कहते हैं किसान अपने मित्रों से।  
एक अकेली युयुत्सु आत्मा ने  
जमा लिया है अपना एकछत्र प्रभाव  
अवांछित आगन्तुकों को लुभाती और चौंकाती हुई।

(जून 1981)

## अरबपति बनाम कौड़ीपति

● पवन, दिल्ली

आज-कल हम अपने आपको (यानी, भारत को) गरीब देशों में नहीं गिनते। इसी साल मार्च में अमीरों के अखबारों में से एक “टाइम्स ऑफ इण्डिया” ने एक खबर छापी थी कि अरबपतियों की गिनती के मामले में भारत का आठवाँ नम्बर हो गया है। अब हमारे यहाँ अमीरों की तादाद बढ़ रही है। और यही नहीं अब तो हम ब्रिटेन और इटली जैसे यूरोपीय देशों के साथ-साथ अपने बड़े एशियाई भाई चीन को भी पीछे छोड़ चुके हैं। इसके अलावा मार्च में ही ब्रिटेन के ‘सनराइज रेडियो समूह’ द्वारा प्रकाशित ब्रिटेन के 300 सबसे धनी एशियाइयों की आधिकारिक सूची में अनिवासी भारतीय इस्पात दिग्गज लक्ष्मी मित्तल को 13.5 अरब पौण्ड की सम्पत्ति सहित न सिर्फ ब्रिटेन बल्कि यूरोप का धनी एशियाई घोषित किया गया है। इसी सूची में 2.1 अरब पौण्ड की सम्पत्ति के साथ कॉल सेंटर टेक्नोलॉजी के महारथी हिन्दुजा बंधुओं को ब्रिटेन में दूसरा स्थान मिला है।

सच पूछिये तो किसी भी देश की व्यवस्था की कसौटी यह नहीं है कि उसमें कितने अरबपति हैं बल्कि यह है कि उसकी जनता में भुखमरी कितनी है। हमारे यहाँ पर हर साल बेरोजगारों की कितनी संख्या बढ़ जाती है, कितने गरीब भोजन के अभाव में कुपोषित होकर फुटपाथों पर तड़प-तड़प कर जान दे देते हैं। कितनी बहनें परिवार का खर्चा चलाने की खातिर सस्ती दरों पर श्रम बेचने के लिए मजबूर हो जाती हैं, कितनी माताएँ केवल चंद सिक्कों के लिए अपने बच्चों तक को बेचने के लिए विवश हो जाती हैं। लेकिन इन सबकी संख्याओं की सूची क्यों नहीं बनाई जाती है? इससे यही पता चलता है कि भारत जैसे देश में उंगली पर गिने जा सकने वाले अरबपतियों का जन्म करोड़ों कौड़ीपतियों की जिन्दगियों को तबाह करके होता है। चंद लोगों के स्वर्गों और विलासिता के महलों को करोड़ों-करोड़ लोगों के शोषण-भरी और नरक-जैसी जिन्दगियों के दम पर ही खड़ा किया जाता है। दुनिया के तमाम अरबपति मेहनतकश गरीब जनता की मेहनत की लूट के दम पर ही अमीर बने हैं।

अब दुनिया की सबसे बड़ी इस्पात कम्पनी के ‘लक्ष्मी स्टील’ के प्रमुख लक्ष्मी मित्तल को ही ले लिया जाय जो कि चीन की समाजवादी चोले में छिपी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के तहत चीन के दसियों हजार खदान मजदूरों की बलि चढ़ाकर अपनी सम्पत्ति में तीन गुने का इजाफा कर 13.5 अरब पौण्ड की सम्पत्ति के साथ यूरोप का सबसे धनी एशियाई बन बैठा है। मित्तल को अमीर बनाने में चीनी अर्थव्यवस्था का बड़ा हाथ है। समाजवाद की आड़ में चीनी हुक्मरान दुनिया के पूँजीपतियों के सामने चीन को सस्ते श्रम की ऐसी मण्डी के रूप में पेश कर रहे हैं, जहाँ बेफिक्र होकर मजदूरों का खून निचोड़ा जा सके। यही कारण है कि सस्ते श्रम के लिए लार टपकाती सैकड़ों कम्पनियों (जिसमें कि ‘लक्ष्मी स्टील’ भी शामिल है) ने अपने कारखाने यूरोप और

अमेरिका से हटाकर अब चीन में स्थापित कर लिये हैं जहाँ से कम लागत में तैयार माल पश्चिम के बाजारों में बेचा जा सके। कारखानों की बढ़ती संख्या के कारण ही चीन में बिजली और कच्चे मालों की लगातार माँग बढ़ रही है। चूँकि चीन अपनी ऊर्जा के लिए बहुत हद तक कोयले पर निर्भर है इसीलिए कोयले की भारी माँग के कारण दाम चढ़े हुए हैं, अंधाधुंध कोयला खनन जारी है। खदान मालिक मुनाफ़े की हवस के तहत सभी सुरक्षा इंतजाम को ताक पर रखकर पागलों की तरह धरती के पेट से खनिज निकालने के लिए रात-दिन खदानों की खुदाई करवा रहे हैं।

चीन में कोयला खदानों की हालत काफी ख़राब है। खदाने मौत का कुँआ बनती जा रही हैं जहाँ लगभग हर सप्ताह दुर्घटनाएँ होती हैं। हाल ही में घटी दो बड़ी खदान दुर्घटनाएँ हुईं लिओ लिन प्रान्त की खुंजियावान कोयला खदान में भीषण विस्फोट हुआ और हेनान प्रान्त की दापिंग कोयला खदान का 650 फीट नीचे गैस विस्फोट हुआ जिनमें क्रमशः 203 और लगभग 150 खदान मजदूर मारे गये।

सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2004 में कुल 6300 खान दुर्घटनाएँ हुईं जिसमें 6000 खदान मजदूर मारे गये वहीं वर्ष 2003 में 6700 लोगों ने अपनी जानें गवाईं। लेकिन कई रिपोर्टों के अनुसार यह संख्या कम से कम 20,000 होगी क्योंकि अवैध खदानों में होने वाली बहुतेरी दुर्घटनाओं की ख़बरें दबा दी जाती हैं। खदानों के खनन में रोजाना लगभग 28 मजदूर मरते हैं। मुनाफ़े की हवस के तहत खदानों के सुरक्षा इंतजामों पर कर्तई ध्यान नहीं दिया जाता। और अवैध खदानों में खनन तब तक चलता रहता है जब तक कोई बड़ी दुर्घटना नहीं हो जाती। वर्ष 2003 में जिक्सी शहर में 115 खदान मजदूर मारे गये थे। उस खान को सुरक्षा प्रावधानों के उल्लंघन के कारण सात बार बंद करने का आदेश जारी हुआ था लेकिन भ्रष्ट अफसरों की मुट्ठी गरम करके खदान तब तक चलती रही जब तक दुर्घटना नहीं हो गयी। जबर्दस्त मुनाफ़े के लालच में अवैध ढंग से उन खदानों में खनन जारी है, जो पहले ख़तरे की आशंका से बंद कर दी गई थी। हजारों बेरोजगारों के कारण इन खदानों में काम करने वालों की भी कमी नहीं रहती क्योंकि एक तो निजीकरण की आँधी में कोयला मंत्रालय को ही खत्म कर दिया गया, जिससे मजदूरों की छँटनी हुई और अवैध खदानों का जाल बढ़ा, दूसरे समाजवाद के दौर की राजकीय व सामूहिक खेती व्यवस्था छिन्न-भिन्न करके लागू पूँजीवादी खेती के कारण देहात से लाखों की तादाद में लोग उजड़कर काम की तलाश में शहरों में आ रहे हैं। मुनाफ़ाखोरों को ऐसे मजदूरों की कमी नहीं रहती जो बेहद कम मजदूरी पर जान हथेली पर लेकर धरती के अँधरे गर्भ में उतर जाते हैं। पिछले साल चीनी फिल्म “अंधा कुआँ” में एक खदान मालिक बड़े गर्व से कहता है “चीन में हर चीज की कमी हो सकती है, पर हमारे लिए मरने को तैयार लोगों की कमी कभी नहीं होगी।”

आज चीनी अर्थव्यवस्था की चमत्कारिक उछाल के चर्चे जोरों पर हैं। वहीं लक्ष्मी मित्तल जैसों का अरबपति बनना उसी चीनी अर्थव्यवस्था की पोल खोलता है, जहाँ करोड़ों लोगों को भयंकर गरीबी व बदहाली में धकेला जा रहा है, जहाँ हर साल

वीसियों हजार खदान मजदूर मुनाफ़े की भेंट चढ़ जाते हैं।

समाजवादी चीन में उद्योगों का विकास आज से कहीं ज्यादा तेज रफ़्तार से हुआ था लेकिन तब दुर्घटनाएँ न के बराबर थीं, क्योंकि तब सारी नीतियों के केन्द्र में मुनाफ़ा नहीं बल्कि मेहनतकश इंसान था।

मगर आज, समाजवाद के दौर में मिले तमाम अधिकार छीन लिये गये हैं। सर्गठित होने व आवाज उठाने के अधिकार समाप्त कर दिये गये हैं।

यह अमीर-ग़रीब और अरबपति-कौड़ीपति भेद केवल चीन में ही नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तान में भी है। आज भारत के औसत आम आदमी की आमदनी और कुल आर्थिक औकात से भारत के अरबपति की आमदनी और औकात 90 लाख गुना ज्यादा है। एक रिपोर्ट के मुताबिक उड़ीसा के कालाहांडी में रहने वाले एक किसान की औसत वार्षिक आय 3000 रुपये थी। वहीं दूसरी तरफ़ रिलायंस ग्रुप के संस्थापक धीरूभाई अम्बानी ने अपने निधन से पूर्व 9 करोड़ रूपए का वार्षिक वेतन उठाया था। विश्व पूँजीवाद के चौधरी अमेरिका में भी हालात भिन्न नहीं है। वहां पर सबसे ज्यादा 341 अरबपति आँके गये हैं। अमेरिका के अरबपति और औसत आम आदमी की आयों के बीच का फ़र्क 80 हजार गुना है।

आज के यह हालात केवल गिने-चुने देशों के ही नहीं है बल्कि पूरे विश्व में ही यही हाल है कि ग़रीब और ग़रीब हो रहा है, अमीर और अमीर हो रहा है। राष्ट्र संघ की विकास रिपोर्ट के मुताबिक पिछले 20 साल से यह अमीर और ग़रीब की खाई सभी देशों में बढ़ी है जिसने आज अरबपति और कौड़ीपति की खाई का रूप धारण कर लिया है।

अमीर-ग़रीब की यह बढ़ती खाई पूँजीवादी विकास की कलाई खोलती है। पूँजीवादी विकास स्वाभाविक रूप से असमान विकास होता है। ऐसे में यह सोचने की बात है कि “पूँजीवाद की अन्तिम विजय” और “इतिहास के अंत” के दावों में कितना दम है। यह मानना मुश्किल है कि लगातार ग़रीब से ग़रीब होती, दबाई जाती बहुसंख्यक आबादी हमेशा चुपचाप निराशा की गर्त में पड़ी रहेगी, वह निश्चित तौर पर बगावत करेगी। उसी मौके के लिए इंकलाबी नौजवानों को अपने आपको तैयार करना है, ताकि वे ऐसे जनउभार को परिवर्तनकारी क्रान्ति में बदल सकें।

## पूँजीवाद की नई गुलामी

● तपीश, दिल्ली

आज अगर दिल्ली, बंगलौर, कोलकाता और मुम्बई जैसे महानगरों के मध्यवर्गीय नौजवानों का साक्षात्कार लिया जाय तो उनमें कइयों का सपना होगा कि वे अमेरिका जाएँ। वैश्विक मीडिया और हॉलीवुड की फिल्मों ने अमेरिका की छवि एक स्वर्ग जैसे ऐश्वर्यपूर्ण, तमाम सुख-सुविधाओं से लैस देश की बनाई है, जहाँ कोई “ग़रीब” नहीं, और अगर है, तो वो भी कार में चलता है। नतीजतन, अमेरिका तीसरी दुनिया के देशों के मध्यवर्ग का स्वप्नदेश बन गया है ‘एवरीबाडी वॉण्ट्स टू फ्लाई टू अमेरिका’।

लेकिन थोड़ा करीब से देखें तो हम पाते हैं कि अमेरिका के स्काई स्क्रैपर्स की बुनियाद में इंसानों की लाशें हैं और उसमें सीमेण्ट की जगह इंसानों की हड्डियों का चूरा लगा है। “सिलिकॉन घाटी” यह नाम शायद ही किसी युवा के लिए अनजाना हो। अमेरिकी ऐश्वर्य का पर्याय बन चुकी यह जगह दुनिया के कम्प्यूटर उद्योग का प्रमुखतम केन्द्र है। यहाँ पहुँचकर उद्योग खड़ा करने वाले उद्यमियों के किस्से वैसे ही मशहूर हैं जैसे हमारे देश के मारवाड़ी महाजनों के किस्से, जो सिर्फ़ लोटा और धोती लेकर निकल पड़े थे और बाद में बड़े-बड़े उद्योगपति बन गये।

लेकिन चलिए यह मान कर चलते हैं कि आप उन लोगों में नहीं है जो सुनी-सुनायी बातों पर यकीन करते हैं; आप सच्चाई का सिर्फ़ एक पक्ष नहीं देखते, दूसरा पक्ष भी देखते हैं और न्याप्रिय हैं; आप का न्याय आप के पेट और स्वार्थपूर्ण इच्छाओं का गुलाम नहीं है; वह सिर्फ़ उसी को सही मानता है जो हकीकत है। सिलिकॉन वैली का एक दूसरा पहलू भी है, जिसमें रुपट मर्डक सरीखों की कोई दिलचस्पी नहीं है। आइए जरा कुछ तथ्यों पर गौर करें।

सिलिकॉन वैली में वर्ष 1998 में शीर्ष 14 प्रतिशत वेतनभोगियों की सालाना आय शेष 86 प्रतिशत कामगारों की कुल आय के बराबर थी! इतना ही नहीं वर्ष 1989 के मुकाबले 1996 में 75 प्रतिशत कामगारों की प्रति घण्टा आय जहाँ घटी है वही शीर्ष 20 प्रतिशत आबादी की आय 1992-1997 के बीच 32 प्रतिशत बढ़ गई है। जहाँ के अधिकांश कामगार लातिनी अमेरिका और एशियाई मूल के मजदूर हैं जिनका श्रम पूँजीवादी जोकों को ज्यादा सस्ते में मिल जाता है।

ये वो शहर है जहाँ 28,000 से ज्यादा लोगों के पास सोने की जगहें नहीं हैं। उन्हें आप गैराज में, कारों या फिर अपने दोस्तों के पास उनकी एकमात्र कोठरी की फ़र्श पर सोना हुआ पा सकते हैं। यहाँ भुखमरी की मार झेल रही 1 लाख आबादी में 41 प्रतिशत वे मजदूर हैं जो इस शहर के कम्प्यूटर उद्योग में मजदूरी करते हैं!

पूँजीवाद आज पहले से ज्यादा क्रूर और नंगा हो चुका है। अब तो उसे स्वांग भरने की जरूरत भी महसूस नहीं होती। उसके उद्योगों में मजदूर को ऐसे ही छीला-काटा जाता है, जैसे मवेशियों को मांस उद्योग में! भूमण्डलीकरण और एकाधिकार पूँजी के बढ़ते जोर के सामने श्रमिक कानूनों, मानवाधिकारों और मानवीय मूल्यों का कोई स्थान नहीं रह गया है।

मजदूरों की मेहनत का आखिरी कतरा तक निचोड़ लेने की हवस ने यहाँ की उद्यमियों/उद्योगपतियों के दिमाग पर वही असर किया है जो अच्छा खाद-पानी मिलने पर मुरझाये पौधे पर पड़ता है। कम्पनियों ने मजदूरी घटाने, पेंशन देने, चिकित्सा सुविधाओं से कन्नी काटने व अन्य रियायतों में भारी कटौती करने के नये-नये तरीके खोज निकाले हैं।

इन नई उद्योग नगरियों में मजदूर को सीधे फ़ैक्ट्रियों में काम देने की बजाय कंट्रिक्ट पर काम दे दिया जाता है। जिसे वे अपने पूरे परिवार के साथ मिलकर पूरा करते हैं। इस तरह कम समय में बेहद सस्ती दरों पर ज्यादा उत्पादन होने लगा है। कम्प्यूटर में इस्तेमाल होने वाले करीब 4 हजार ट्रांज़िस्टर दिये गये

सर्किट के अनुसार जोड़ने पर प्रति ट्रांजिस्टर महज 1 पेन्स भुगतान किया जाता है! इतना ही नहीं, इस उद्योग में इस्तेमाल होने वाले रसायनों जैसे बेन्जीन, आर्सेनिक, क्रोमियम आदि कैंसर का कारण बन रहे हैं। मजदूरों के बच्चों में जन्मजात विकृतियों के मामले तेजी से बढ़े हैं। इन मजदूरों के हालात रोम के गुलामों की याद दिलाते हैं। 15-16 घण्टे इन मजदूरों को खटना होता है जिसके बाद वे मुश्किल से अपना गुजारा चला पाते हैं। कोई सुरक्षा नहीं होती और भविष्य अंधकारमय और जीवन स्थितियाँ पशुवत होती हैं लेकिन गुलामी चाहे कितनी भी लम्बी हो, खत्म हो जाती है।

इस अन्याय के खिलाफ जनता चुप बैठी हो ऐसा नहीं है। कई जगह हड़तालें और विरोध-प्रदर्शन हुये। एक मजदूर ने मीटिंग में खुलेआम ऐलान किया कि “गुलामी के दिन पूरे होने को आये हैं”।

यह प्रतिरोध अभी अपनी शैशवावस्था में है और धीरे-धीरे जड़ें जमा रहा है।

यह सच है कि तकनोलॉजी ने मानवता के विकास के नए रास्ते खोल दिए हैं। लेकिन पूँजीवाद में तकनोलॉजी उसी प्रकार होती है जैसे बन्दर के हाथ में उस्तरा। तकनोलॉजी का इस्तेमाल अंधाधुंध मुनाफ़ा कमाने के लिए किया जाता है और ऐसा करने में इंसानी जिन्दगी, पर्यावरण, सबकुछ तबाह कर दिया जाता है।

क्या कोई ऐसा, इंसानपसंद नौजवान होगा जो इस सच्चाई से इंकार कर खून में लिथिड़ी ऐश्वर्य की दुनिया को गले लगाना चाहेगा!

## अब इंजीनियरिंग-मेडिकल भी रोजगार की गारण्टी नहीं

### ● विवेक, लखनऊ

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुनाफे की कई शर्तें होती हैं। उनमें से एक होती है बेरोजगारों की रिजर्व आर्मी की मौजूदगी। फैक्ट्री और दफ्तरों में काम करने वालों के अलावा अगर बेरोजगारों की एक विशाल सेना बाहर मौजूद हो तो रोजगारशुदा कामगारों के मोलभाव करने की क्षमता कम हो जाती है और उनका शोषण आसान हो जाता है। इसीलिए पूँजीपतियों के मुँह से यह जुमला सुनने को मिल जाता है कि बेरोजगार मजदूर तो सड़कों पर कुत्तों से भी आसानी से मिल जाएँगे।

चुनाववाज पार्टियाँ लोगों को भरमाने के लिए कभी ‘साल में सौ दिन रोजगार’, ‘काम के बदले अनाज’ आदि जैसे नारे देती रहती हैं। मगर वे भी जानती हैं कि बेरोजगारी इस व्यवस्था के अन्दर न तो खत्म की जा सकती है और न ही ऐसा करना लाभदायक होगा। इसलिए बेरोजगारी महज एक चुनावी मुद्दा है। लिहाज, पूरी दुनिया में बेरोजगारी तेजी से बढ़ रही है।

आज भारत में करीब 25 करोड़ लोग बेरोजगार हैं और यह संख्या लगातार बढ़ रही है। इनमें अधिकांश आम घरों से आने वाले लोग हैं। कोई दसवीं पास है, तो कोई बारहवीं पास है, किसी ने आई.टी.आई किया है, तो किसी ने पॉलीटेक्निक। मगर नई आर्थिक नीतियाँ लागू होने का बाद से एक नई परिघटना

सामने आई है। अब बेरोजगारों की इस जमात में डॉक्टर और इंजीनियर भी शामिल हो गए हैं।

भारत में यह सोच काफी हावी रही है कि बेटा अगर इंजीनियर या डाक्टर बन गया तो समझ लो कि रोजगार पक्का। लेकिन भूमण्डलीकरण की कड़वी सच्चाई अब इस भ्रम को तोड़ रही है। आज भारत में 20 प्रतिशत इंजीनियर बेरोजगार घूम रहे हैं। एक समय में ये क्षेत्र रोजगार की गारण्टी माने जाते थे।

नतीजतन, कोई इंजीनियर-डाक्टर से नीचे कुछ बनना ही नहीं चाहता था। भारत में 1993 में 5,97,680 इंजीनियर थे। 2003 में यह संख्या दोगुनी होकर 11,83,186 हो गई। नतीजतन, सरकारी और निजी संस्थानों में इंजीनियरिंग कोर्सों की मोटी फ़ीस देकर आज जब छात्र इंजीनियरिंग की डिग्री लेकर निकलता है तो कह नहीं सकता कि उसे नौकरी मिलेगी या नहीं। जाहिर है, कि हमेशा ऊपर देखने की आदत रखने वाले मध्य वर्ग को इस बदलाव से थोड़ा होश आएगा और उसके नौजवान अपने कैरियरवाद को तिलांजलि देकर समाज के बारे में सोचने को मजबूर होंगे।

## क्रांतिकारी छात्र राजनीति से घबराये हुक्मरान

### ● अजय, दिल्ली

छात्रसंघ का अधिकार काफी संघर्ष के बाद और कुर्बानी के बाद नेहरू काल में छात्रों को हासिल हुआ। एक समय में इसे मंच बनाकर छात्रों ने कई जगह शानदार आन्दोलन भी खड़े किए। दुर्भाग्य से आज कैम्पसों में क्रांतिकारी शक्तियाँ बेहद कमजोर हैं और छात्रसंघ पर चुनाववाज पार्टियों के लम्गू-भग्गुओं का कब्जा हो गया है। छात्रसंघ बोटल-अण्डे-डण्डे-झण्डे की राजनीति का अखाड़ा बन गया है।

लेकिन बढ़ती बेरोजगारी, बढ़ती फ़ीसों और घटती सीटों के कारण इस बात की गुंजाइश है कि कैम्पसों में क्रांतिकारी शक्तियाँ फिर से जड़ जमा लें। इसी भय से पिछले चार-पाँच वर्षों में जगह-जगह छात्रसंघ का अधिकार छीने जाने की घटनाएँ हुई हैं। पहले उत्तर प्रदेश में भाजपा के राज में छात्रसंघ चुनाव बन्द करवा दिये गए। मुलायम सिंह ने अपनी समाजवादी छात्र सभा लांच करते हुए छात्रों का समर्थन जीतने के लिए और छात्र राजनीति को अपना भर्ती केंद्र बनाने के लिए यह प्रतिबंध खत्म कर दिया।

इसी तरह का अलोकतांत्रिक आदेश पिछले दिनों राजस्थान हाईकोर्ट से आया। राजस्थान हाईकोर्ट की डिवीजन ब्रांच ने सरकार को आदेश दिया कि शैक्षिक संस्थानों में छात्र और शिक्षक राजनीति को खत्म कर दिया जाय। आदेश में छात्रसंघ को “राजनीति का अखाड़ा” कहा गया है और शिक्षकों की राजनीति को शिक्षा के गिरते स्तर का कारण बताया गया है। राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति ने हाईकोर्ट के साथ अच्छी जुगलबंदी करते हुए निर्णय को सही ठहराया।

अगर छात्रसंघ को खत्म किया जाता है तो यह एक फासिस्ट और अलोकतांत्रिक कदम होगा। छात्र कहीं भी आवाज

उठाएंगे तो उन्हें कुचला जाएगा और चुनावबाज पार्टियों के लग्गुओं-भग्गुओं का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, मगर कैम्पसों में एक मुर्दा शांति छा जाएगी। छात्रसंघ की गन्दी राजनीति का इलाज छात्रसंघ को खत्म करके करना वैसा ही है जैसे कि बीमार की बीमारी का इलाज करने की बजाय बीमार को ही खत्म कर दिया जाय। कोशिश यह होनी चाहिए कि कैम्पस में मौजूद क्रांतिकारी ताकतें आगे बढ़कर छात्रसंघ की कमान अपने हाथ में ले लें।

## इस बार भी आदमखोर शिक्षा व्यवस्था की बलि चढ़े मासूम बच्चे

● योगेश, दिल्ली

“पापा मैं आप लोगों के लायक नहीं हूँ और न ही आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतर सकता हूँ। आप किसी और को अपना बेटा बना लें, जो आपकी इच्छाओं को पूरा कर सके।”

“परीक्षा की तैयारी न होने कारण फेल होने का डर बार-बार सता रहा है। मम्मी-पापा ने मुझसे डेरों उम्मीदें लगा रखी हैं जिसे मैं पूरा नहीं कर पाऊँगा इसलिए मैं....!”

आत्महत्या करने से पहले सुसाइड नोट में दर्ज स्कूली छात्रों की ये अभिव्यक्तियाँ उस मानसिक तनाव को दर्शाती हैं जो इस शिक्षा व्यवस्था और समाज की देन है जिसमें पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनने का दबाव माँ-बाप के सपने और समाज की उम्मीदों पर खरा न उतर पाने कि स्थिति में वह अपने आपको हताश और निराश पाता है और तंग आकर वह मौत को गले लगा लेता है।

हाल में राजधानी और अन्य महानगरों में छात्रों द्वारा आत्महत्या करने की प्रवृत्ति में तेजी से इजाफ़ा हुआ है। इन छात्रों में अधिकांश छात्र सम्पन्न घरों से आते थे और कई पढ़ने में औसत से अच्छे थे। लेकिन भूमण्डलीकरण के दौर में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों ने शिक्षा व्यवस्था में जिस अस्वस्थ प्रतियोगिता को जन्म दिया है उसमें छात्र पिछड़ने पर अपने आपको अपराधग्रस्त महसूस करने लगते हैं। दूसरी तरफ़, माँ-बाप भी बच्चों पर सिर्फ़ आगे बढ़ने के लिए दबाव डालते हैं। उनके लिए बच्चे की असफलता उनकी सामाजिक हैसियत को कमतर कर देती है। लेकिन ऐसा नहीं है कि छात्रों में बढ़ती इस प्रवृत्ति के लिए माँ-बाप या स्वयं छात्र को दोषी ठहराया जा सकता है। इसका कारण तो इस पूँजीवादी व्यवस्था का पूरा सामाजिक ताना-बाना है जिसमें घिसी-पिटी लकीर पर चलना ही सफलता माना जाता है। इस समाज की रीत है कि ‘जो जीता वही सिंकदर, जो पिछड़ा वह बंदर’। पिटी-पिटाई लीक पर जो न चल पाए उसे समाज में हिकारत भरी निगाहों से देखा जाता है। यह शिक्षा प्रणाली जिस प्रतियोगिता को जन्म देती है वह आपस में ईर्ष्या और द्वेष को ही जन्म नहीं देती बल्कि छात्रों को आत्महत्या करने पर मजबूर भी करती है।

भूमण्डलीकरण और उदारीकरण के दौर में बदली शिक्षा

नीति ने इस प्रणाली को और अधिक अमानवीय बना दिया है जिसमें केवल सबसे पहले स्थान पर आने वाले के लिए ही मौका है, जबकि उससे कमतर छात्रों का भविष्य अंधकार में छोड़ दिया जाता है। साथ ही पूँजीवादी मीडिया और संस्कृति भी यही प्रचारित करती है “पढ़ो ताकि बड़ा आदमी बनो और ख़ूब पैसा कमाओ”। वह स्वयं भी गुणगुनाता है, “दुनिया जाए भाड़ में ऐश करो तुम”। यह सोच छात्रों को लालची, स्वार्थी और संवेदनशून्य बना रही है। इस शिक्षा व्यवस्था के दूसरे पहलू पर गौर करना भी जरूरी है। कोई छात्र इस शिक्षा व्यवस्था में सफलता प्राप्त कर ले, तो क्या वह एक बेहतर इंसान की जिन्दगी जी पाएगा? इस शिक्षा व्यवस्था के केन्द्र में इंसान नहीं है आम घरों से आने वाले छात्रों को शिक्षा इसलिए दी जाती है ताकि उन्हें इस व्यवस्था के यंत्र के यंत्र का एक नट-बोल्ट बनाया जा सके। यानी उस भीड़ में शामिल किया जा सके जो इस व्यवस्था की सेवा में लगी है।

इस शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य छात्रों को भेड़ बनाना है या उसे मरने के लिए मजबूर कर देना है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो इस कदर अमानवीय है, जो मासूम छात्रों की हत्यारी है उसकी सही जगह इतिहास का कूड़ादान ही हो सकती है। लेकिन यह शिक्षा व्यवस्था एक खास राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था की पैदावार है। इसे अलग से नहीं बदला जा सकता। इसे बनाया ही इस तरीके से गया है कि यह इस राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था की सेवा करे। हर राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था की अपनी शिक्षा व्यवस्था होती है। पूँजीवादी व्यवस्था का सूत्रवाक्य है “सर्वाइवल ऑफ दि फिटिस्ट” तो उसकी शिक्षा व्यवस्था का सूत्रवाक्य है “भेड़ बनो या जा मरो।”

## “पैदा हुई पुलिस तो इबलीस ने कहा...”

● प्रसेन, दिल्ली

सन् 1861 में भारतीय पुलिस के जन्म पर एक शायर ने तुक मिलाया था: “पैदा हुई पुलिस तो इबलीस ने कहा, लो आज हम भी साहिबे-औलाद हो गये।” उस शायर के इस शेर की रोशनी में, अंग्रेजी पुलिस के कारनामों को देखें और आजादी के बाद भारतीय पुलिस के कारनामों को देखें तो साफ़ तौर पर जाहिर होगा कि इबलीस (शैतान) के इस पूत के लिए कुछ और ही उपमा ढूँढ़नी पड़ेगी। यह उन हदों को कब का पार कर गया है। आये दिन पुलिस-उत्पीड़न, हिरासत में हत्या, हिरासत में बलात्कार की घटनायें जिस तरह से बढ़ी हैं वह पुलिस की हैवानियत में भारी वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। और ये घटनायें सिलसिलेवार लहरों जैसी चलती रहती है अभी यहाँ थोड़ी देर बाद वहाँ....। यहीं राजधानी दिल्ली में (जहाँ हर एक चौराहे पर बोर्ड लगा मिलता है “दिल्ली पुलिस आपकी सेवा में”) 15 मार्च को एक मजदूर की पुलिस हिरासत में मौत और इस पर हुए जनविरोध के दमन, का मामला ठण्डा भी नहीं हुआ था कि अगले ही दिन 16 मार्च को शाहदरा में एक वृद्ध ट्रक-ड्राइवर को उल्टा टाँग कर पीट-पीटकर मार दिया। बाकी सरकारी आँकड़ों से भी

देखें तो प्रतिदिन 4 मौतें हिरासत में होती हैं और पता नहीं कितनी मौतें ऐसी हैं जिनका कुछ पता ही नहीं लग पाता। इन सब घटनाओं से पुलिस की छवि लोगों में किस तरह की है, यह इसी बात से जाहिर हो जाता है कि उनके सामने “पुलिस” का नाम लेते ही हिकारत से उनके चेहरे सिंकुड़ जाते हैं।

शैतान के गर्भ से पैदा होने वाला तो शैतान जैसा चरित्र लेकर ही पैदा होगा। परन्तु आम घरों के बच्चे तो एक साधारण इंसान की तरह पलते-बढ़ते हैं। लेकिन जब वे पुलिस के मुलाजिम बनते हैं तो उनमें इन्सानियत खत्म होती है और यह खुद-ब-खुद नहीं होता। व्यवस्था योजनाबद्ध ढंग से उन्हें ऐसा बना देती है। यह व्यवस्था पैसों पर टिकी है और थोड़े से धन्नासेओं और मुनाफ़ाखोरों के लिए बनी है। आम घरों से जाने वाले नौजवानों के कन्धों पर जिस दिन पुलिस का बिल्ला लगाया जाता है उसी दिन से उन्हें ऐसे माहौल में रखा जाता है जो उन्हें लोगों के दुःख-दर्द और परेशानियों से उदासीन बनाना शुरू कर देता है। और पूरी ट्रेनिंग के दौरान यही बात उनके दिलो-दिमाग में टूँस-टूँस कर भरी जाती है कि जनता यानी भेड़-बकरी। हाँ! दो मुख्य कामों में बहुत ही एहतियात और सावधानी बरतने की बात कदम-कदम पर बतायी जाती है। पहली, कि धन्नासेओं और विशिष्ट जनों की देखभाल करना। दूसरी, आला अधिकारियों की जेबें गरम करने में कत्तई गड़बड़ी न करना। उनकी पदोन्नति इत्यादि का रास्ता यहीं से होकर जाता है। हर थाने से पुलिस के आला अधिकारियों को जाने वाले फिक्स रकम के लिए इन्हें हर तरह के कुकर्म करने पड़ते हैं। लोगों को मार-पीट कर, फ़र्जी मुकदमा गढ़कर, धमकाकर अनेकों तरीकों से ये पैसे वसूल करने होते हैं। अब पुलिस के आला अधिकारी भी बेवकूफ तो होते नहीं! वो अच्छी तरह जानते हैं कि जब पुलिस के मामूली सिपाहियों को खुद के लिए लूटने को नहीं मिलेगा तो उनमें असन्तोष बढ़ेगा। इसलिए उस फिक्स रकम के बाद इस बात की अलिखित छूट रहती है कि वो अपने लिए भी पैसा बना सकें। अब रुपये तो किसी को काटते नहीं। इस मेंगाई बदहाली के दौर में, अन्य सरकारी महकमों की तरह पुलिस महकमे के मुलाजिमों की स्थिति भी बेहाल ही रहती है। इससे उनमें सहज ही यह तर्क पनपता है कि जब साहब के लिए लूट रहे हैं तो अपने लिए लूटने में क्या बुराई? और धीरे-धीरे यह हवस बढ़ती जाती है, जो कि ऊपर वालों की देन होती है। इन परिस्थितियों में ईमानदार बनने की बात सोचना भी असम्भव है और जो “जनसेवा के जोश” में है उसको बर्खास्त कर दिया जाता है या बिना पदोन्नति के सड़ाकर ठिकाने लगा दिया जाता है। तो शुरुआत में ऐसे तमाम युवा जिनके हृदय के कोटरों में ईमानदारी, संवेदनशीलता होती है, वह परिस्थितियों के दुर्भाग्यपूर्ण अंधकार में दम तोड़ देती है। और धीरे-धीरे यह भाव पनप जाता है “अपना काम बनता-भाड़ में जाय जनता”। संवेदनशीलता की जगह वहशीपन और संवेदनहीनता ले लेती है। लोग पुलिस की कारगुजारियों से परेशान रहते हैं। लोग इन्हें गाली देते फिरते हैं। इससे ये लोगों के प्रति खीजे रहते हैं। साहब की डॉट-फटकर, अन्य समस्यायें इन्हें चिड़चिड़ा बना देती हैं। और जब पुलिस उत्पीड़न के खिलाफ लोगों को क्षोभ फूटता है तो पिटते भी ये मामूली सिपाही ही हैं। मामला अधिक बढ़ने पर लाइनहाजिर या

सस्पेण्ड भी ये आम पुलिसकर्मी ही होते हैं। साहब तो साफ-साफ निकल जाते हैं। यहाँ यह कहावत कि “गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है” उल्टी हो जाती है। घुन तो पिस जाता है पर गेहूँ साबुत बचा रहता है। अब आम पुलिसकर्मी यह गुस्सा साहब पर तो निकाल नहीं सकते। तो वह लोगों पर निकालते हैं। जिसका नतीजा यह होता है कि जनता तथा पुलिस के बीच की खाई चौड़ी होती है।

ऐसा नहीं है कि पुलिस का यह चरित्र अनजाने में या लापरवाही से बना हो। पुलिस प्रशिक्षण बनाया ही इस तरह गया है जो पुलिस को अमानवीय, जनता से कटा हुआ बना देता है। इससे व्यवस्था के खिलाफ आवाज अठाने वालों पर दमन का डण्डा चलाने में कोई व्यवधान नहीं पड़ता। पुलिस जनता के लिए सत्ता का प्रतीक होती है। पुलिस का आतंक मतलब सत्ता का आतंक। और यही आतंक कायम रखने के लिए पुलिस का अमानवीकरण किया जाता है।

## मैं से हम तक की यात्रा : वर्तमान चुनौतियाँ

● पंकज, सोनीपत

हमें बचपन से पढ़ाया जाता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होता है। लेकिन सामाजिक होने के बावजूद आज के समाज में उसका अस्तित्व अक्सर महज एक व्यक्ति के रूप में रह जाता है। एक समष्टि का अंग होते हुए भी वह अपने विकास की कल्पना मुख्य रूप से व्यक्ति के रूप में ही करता है। समाज में कला, साहित्य, संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान का विकास तो पूरे समाज की सामूहिक मेधा से होता है लेकिन मनुष्य उसका लाभ व्यक्तिगत रूप से भी उठाता है। समाज में समृद्धि और सम्पदा का सृजन जो वर्ग करते हैं वे उन से ही वंचित कर दिये जाते हैं। मैं से हम तक की यात्रा अर्थ है, सामाजिक रूप से सृजित समस्त सम्पदा का समूचे समाज द्वारा सामूहिक रूप से और समानतापूर्वक उपयोग।

इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि मानव समाज ने आदिम युग से आज तक जो भी प्रगति की है वह सामूहिक मानवीय प्रयासों के द्वारा ही सम्भव हो सकी है। आदिम युग में मनुष्य प्रकृति के समक्ष असहाय था। प्राकृतिक शक्तियों का मुकाबला मनुष्य सामूहिक रूप से ही कर सकता था। उत्पादक शक्तियों के कम विकास के कारण मनुष्य अलग-अलग अस्तित्वमान रह ही नहीं सकता था। लेकिन उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ मनुष्य के लिए अकेले उत्पादन कर पाना सम्भव हो गया और यहीं से निजी सम्पत्ति का जन्म हुआ। निजी सम्पत्ति के जन्म के साथ मानव-समाज के वर्गों में बंटने की प्रक्रिया शुरू हो गयी। कुछ वर्ग उत्पादन के साधनों से वंचित कर दिये गये और कुछ वर्ग इन साधनों पर काबिज हो गये। इसके साथ ही मनुष्य की समष्टिगत भावना विखण्डित हो गयी और ‘मैं’ और ‘हम’ का टकराव शुरू हो गया। और यहीं से मानवता स्वार्थ, ईर्ष्या, लालच, अहंकार और भय के दलदल में धँसने लगी। प्रागैतिहास के

अध्ययन से पता चलता है कि मानवीय चेतना का जन्म ही समष्टिगत भावना से हुआ था। लेकिन निजी सम्पत्ति के साथ व्यक्तिवाद का जन्म हुआ और यह भावना विघटित हो गयी। नतीजा आज सामने है हर इंसान सिर्फ अपने लिए जी रहा है और अलगाव, बेगानेपन और अकेलेपन का शिकार है।

मानवता को इस दलदल से निकालने के लिए अतीत में कई प्रयास हुए हैं। यह सच है ये प्रयोग असफल हो गये लेकिन ये प्रयोग एक प्रकाश-स्तम्भ की तरह मानवता के लिए आगे का रास्ता प्रशस्त करने के लिए रोशनी बिखेर रहे हैं। आज मनुष्य ने विज्ञान और तकनोलॉजी में शानदार प्रगति कर ली है। खाद्यान्न उत्पादन से लेकर औद्योगिक उत्पादन तक, हर क्षेत्र में मनुष्य ने सन्तोषजनक प्रगति की है और आगे भी प्रगति करने की असीम सम्भावनाएँ मौजूद हैं। विज्ञान और तकनोलॉजी इतनी जटिल हो चुकी है कि अब उसे सामूहिक प्रयास से ही आगे बढ़ाया जा सकता है। उत्पादन प्रक्रियाओं की भी यही स्थिति है एक मनुष्य के प्रयास अब बहुत कारगर नहीं रह गये हैं। यानी उत्पादन से लेकर आविष्कार तक की प्रक्रिया सामाजिक हो चुकी है। इस समाजीकरण का अन्तरविरोध उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने से है। 'मैं' और 'हम' के बीच का अन्तरविरोध दरअसल इसी अन्तरविरोध का प्रतिबिम्बन है। और 'मैं' और 'हम' के बीच के अन्तरविरोध को उत्पादन के समाजीकरण और उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने के बीच के अन्तरविरोध के साथ ही खत्म किया जा सकता है।

आज की चुनौती भी इसी बात से समझी जा सकती है। जब तक समाज के संवेदनशील, इन्साफपसन्द, और बहादुर नौजवान मेहनतकश आबादी के साथ मिल कर एक ऐसे समाज की स्थापना नहीं करते जिसमें उत्पादन, राज-काज और पूरे समाज के ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक होगा, तब तक 'मैं' और 'हम' तक की यात्रा पूरी नहीं हो सकती। तब तक समाज की बहुसंख्यक आबादी ज्ञान-विज्ञान कला और जीवन की बुनियादी जरूरतों से वंचित रहेगी।

## कन्या धन योजना की असलियत

● अरुण कुमार, इलाहाबाद

उ.प्र. के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने अपनी राजनीतिक दरियादिली दिखाई, यहाँ पर उन्होंने गरीब लड़कियों के लिए अपने खजाने का दरवाजा खोलकर एक बार फिर गरीबों का मसीहा बनने की नौटंकी शुरू कर दी है।

'कन्या धन योजना' लागू करके यह दिखाया जा रहा है कि समाजवादी पार्टी गरीबों का बहुत ख्याल करती है। यह बात जग जाहिर है। अभी यहाँ पर अनाज घोटाला जम कर चल रहा है। यह अनाज भूख से मर रही गरीब जनता के लिए आया हुआ था। लेकिन उसे तो यहाँ के मंत्री और अधिकारी मिलकर डकार गये। इस तरह की सभी योजनाओं का फायदा कुछ ही लोगों को मिलता है।

'कन्या धन योजना' के तहत उन गरीब लड़कियों को 20,000 हजार रुपये दिये जायेंगे जिन्होंने इण्टर की परीक्षा पास की है और जो गरीबी रेखा के नीचे जी रही हैं। इस योजना के लिए 200 करोड़ रुपये का बजट पास किया गया है ताकि गरीब लोग भी अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिला सकें। लेकिन गरीबी रेखा का जो पैमाना बनाया गया है (ग्रामीण क्षेत्र में 19,000 रु. शहरी क्षेत्र 25,000 रु. की सालाना आय हो) उसे देखकर लगता है कि शायद ही इन घरों के बच्चे पढ़ने जाते हों, इण्टर तो बहुत दूर की बात है। क्योंकि 19 या 25 हजार सालाना कमाने वाला परिवार किसी तरह दाल-रोटी खाकर अपनी जीवन बसर करता है। वह अपने बच्चों की पढ़ाई कहाँ तक करवा सकता है, धरती पुत्र कहलाने वाले मुलायम सिंह को यह बात नहीं मालूम है।

इस योजना के लागू होते ही अधिकारियों की चांदी हो गई और पैसा गरीब जनता तक न पहुँच कर गुलत लोगों के हाथों में पहुँच गया। फर्जी प्रमाण-पत्र धड़ल्ले से बनाये गये। अमीर लड़कियों की गरीब बनाया गया। इस घटना से मुलायम सिंह सपा कार्यकर्ताओं से नाराज हो गये कि वे इस योजना को ठीक तरह से लागू नहीं कर सके, क्योंकि इसी पर उनकी अपनी राजनीति टिकी थी। स्वयं मुलायम सिंह चेक वितरण करते समय छात्राओं से कह रहे थे कि घर जाकर कहना वोट सपा को ही दें।

घोटाले की जाँच कर रहे टास्क फोर्स की रिपोर्ट के अनुसार वे जाँच करने जिस भी क्षेत्र में गये वहाँ की कोई भी छात्रा गरीबी रेखा से नीचे की नहीं मिली, आधिकतर मध्य वर्ग, या उच्च वर्ग की छात्राएँ ही मिली। संयुक्त शिक्षा निदेशक अमर नाथ वर्मा के अनुसार गोरखपुर में 1,240 लड़कियों को 248 लाख, देवरिया के 792 लड़कियों को 248 लाख, महाराजगंज में 637 लड़कियों को 127.40 लाख और कुशीनगर में 1,172 लड़कियों को 234.40 लाख रुपये दिये गये। ये सारे पैसे तथाकथित गरीब छात्राओं को मिले जिनके पास अच्छे घर-बंगले, गाड़ियाँ, दुकानें आदि हैं। और जिनके बाप अध्यापक, तहसीलदार भूमि संरक्षण अधिकारी जैसे पदों पर हैं। ऐसी है हमारी प्रदेश की गरीब जनता! बाकी सभी अमीर हैं जो इस योजना से वंचित ही रह गये!

प्रदेश सरकार वास्तव में गरीब बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाना चाहती है? यदि वह उच्च शिक्षा दिलाना चाहती है तो उसे सबसे पहले शिक्षा को प्राइमरी में ले कर विश्वविद्यालय तक मुफ्त करना चाहिए और विश्वविद्यालयों का निजीकरण बन्द करना चाहिए। एक तरफ सीटों में कटौती और फीसों में वृद्धि की जा रही है और दूसरी तरफ गरीब छात्राओं को उच्च शिक्षा देने की बात जा रही है। क्या यह सब नौटंकी नहीं हो रही है? हर साल इण्टर पास करने के बाद हजारों छात्रों का स्नातक स्तर पर दाखिला नहीं हो पाता है। इसके लिए मुलायम सरकार और कालेज बनवाने के बारे में क्यों नहीं सोचती? वह केवल पैसे बाँट कर पीछा छुड़ाना चाहती है और साथ-ही-साथ अपने नाम को हाईलाइट करना चाहती है ताकि उनका वोट बैंक बना रहे। सही मायने में सबको शिक्षा तभी मिल सकती है जब पूरे भारत में एक बेहतर व्यवस्था हो जिसमें आम आदमी के बारे में सोचा-समझा जाता हो न की बड़े-बड़े पूँजीपतियों के बारे में।

# जनता के भगवान डॉक्टर, डॉक्टर का भगवान पैसा

● नमिता, इलाहाबाद

क्या कहा? स्वस्थ करने की गारण्टी? भई गारण्टी तो पैसा लौटाने की होनी है, स्वस्थ करने की नहीं। मरीज का कर्तव्य है पैसा देना और डॉक्टर का कर्तव्य है इलाज करना। फिर बीच में स्वस्थ करना कहाँ से आ गया?

यही है हमारे भूमण्डलीकरण के जमाने की उदारिकरण की बयार, जहाँ हर चीज का निजीकरण हो चुका है। चिकित्सा का भी निजीकरण हो चुका है। डॉक्टर लोग काफी उदार हो गए हैं, इतने उदार कि लोगों की जान लेने में उदारता की सीमा पार कर जाते हैं।

अब भई इस उदारिकरण के जमाने में लोगों को अपनी जान बचानी है तो डॉक्टरों को पत्रम-पुष्पम तो करना ही पड़ेगा, माल-पानी तो देना ही पड़ेगा। थोड़ा हाड़-मांस तो गलाना ही पड़ेगा। या फिर उधार पर पैसा ले लिया जाय, या सामान गिरवी रख दिया जाय। फिर तो पूरी जिन्दगी पड़ी है उधार चुकता करने के लिए।

अब आप कहेंगे चिकित्सा जैसे मानवीय पेशे में इतनी असंवेदनशीलता? तो हम एक बार फिर कहेंगे कि भूमण्डलीकरण का जमाना है। हर चीज का बाजारीकरण हो चुका है। 'येन-केन प्रकारेण' आज के बाजारू जमाने की विशेषता है। पैसा कमाने की अन्धी प्रतियोगिता में शामिल होना तो इनकी नियति है। जितना चाहे आदमी के जिन्दा लाश को नोचा-खसोटा जा सकता है।

आए दिन डॉक्टरों की घोर आपराधिक लापरवाही के कारण लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। ऑपरेशन के दौरान कभी मरीज के पेट में कैंची छोड़ देना, कभी गलत इंजेक्शन देकर लोगों की जान ले लेना आम बात हो गयी है। लेकिन ये दरिंदे बड़ी ही बेशर्मी से अपना पल्ला झाड़ लेते हैं और कहते हैं कि सारे मरीजों को तो नहीं बचाया जा सकता। लोगों का मरना-जीना तो लगा ही रहता है। लेकिन अगर डॉक्टरों की लापरवाही के कारण किसी मरीज की जान जाए तो क्या उसे माफ किया जा सकता है?

पिछले दो-तीन महीनों के अन्दर डॉक्टरों की लापरवाही ने कई मरीजों के जान ली, जिन्हें बचाया जा सकता था। कुछ दिनों पहले बाराबंकी के एक अस्पताल के डॉक्टरों ने एक गर्भवती महिला का ऑपरेशन करने से इसलिए इंकार कर दिया क्योंकि उसके पास 20,000 रुपये नहीं थे। मजबूरन उसे अस्पताल के बाहर तपती दुपहरी में बच्चे को जन्म देना पड़ा और बच्चे की मौत भी हो गई।

दिल्ली के एक सम्मानित अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में गलत इंजेक्शन देने से मरीज की मौत हो गई। दरअसल हुआ यूँ कि उस अस्पताल में एक ही नाम के दो मरीज इलाज करा रहे थे, जिसमें एक न्यूमोनिया की शिकायत थी और दूसरे को लीवर

की बीमारी थी। न्यूमोनिया वाले मरीज को लीवर वाले मरीज का इंजेक्शन लगा दिया गया। इंजेक्शन लगाने के पहले जब मरीज के परिजनों ने नर्स को बताया कि यह इंजेक्शन मरीज के परचे में नहीं लिखा है तो नर्स ने उन्हें डॉक्टर चुप करा दिया कि मरीज को क्या देना है क्या नहीं, यह तुम जानते हो या हम? और बिना परचा देखे ही मरीज को इंजेक्शन लगा दिया और तीन घंटे बाद उस मरीज की मौत हो गई।

दिल्ली के ही एक नामी-गिरामी आस्पताल में एक बच्चे के लीवर की बायप्सी कराई जानी थी लेकिन डॉक्टरों ने लीवर की बजाये किडनी की बायप्सी कर दी। जब बच्चे के पिता ने शिकायत की तो दुबारा बच्चे को बायप्सी के लिए ले जाया गया, लेकिन घटियाई और असंवेदनशीलता की हद तो तब हो गई जब दुबारा बच्चे की बायप्सी लीवर की जगह न करके किसी और जगह की कर दी गई।

अभी कुछ दिनों पहले ही अहमदाबाद के एक अस्पताल में कान के एक मामूली से ऑपरेशन के बाद गलत इंजेक्शन के कारण एक बच्चे की मौत हो गई। जब घरवालों ने शिकायत की तो उसे देखने तक कोई डॉक्टर नहीं आया। और अब ये डॉक्टर गलत इंजेक्शन देने वाली उस नर्स को बचाने में लगे हैं।

यह तो सिर्फ कुछ बानगियाँ हैं, "सम्मानित" अस्पतालों और महेंगे नर्सिंग होमों की। बाकी आम गरीब आबादी के इलाज के लिए कौन से तरीके अपनाये जाते होंगे आप सोच सकते हैं।

रोज-ब-रोज हम ऐसी घटनाएँ देखते और सुनते हैं। कुछ समय तक हमारा गुस्सा उबलता है, हम उस पर बात करते हैं, फिर कुछ दिन में सब कुछ भूलकर सामान्य जीवन जीने लगते हैं। क्या हमारी संवेदनाएँ इतनी भोथरी हो गई हैं कि भयंकर से भयंकर हादसे भी हमें झकझोर नहीं पाते? सब कुछ देखकर भी चुप रहना और उसे अपनी नियति मानकर बर्दाश्त करना तो इसानी गुण नहीं है? ये भावना कहीं हमें रोबोट न बना दे और धीरे-धीरे तिल-तिल कर मरने को ही हम जीना न समझ बैठें।

लेकिन तकलीफदेह बात तो यह है कि आज युवा ही, जो सबसे ज्यादा संवेदनशील, न्यायप्रिय, जागरूक और गर्म खून वाला जुझारू तेवर का होता है, ठण्डा पड़ा हुआ है। यह व्यवस्था उसे इतना कायर, स्वार्थी और कैरियरवादी बना रही है कि वह अपने अलावा किसी और के बारे में सोच ही नहीं पा रहा है। अपने आस-पास की अमानवीय घटनाओं को देखकर भी वह बगावती तेवर न अपनाकर सिर्फ अपने भविष्य के बारे में सोच रहा है कि कल वह क्या बनेगा।

डॉक्टरी की पढ़ाई भी लोग इसलिए नहीं करते कि उन्हें मानवता की सेवा करनी है, बल्कि इसलिए करते हैं कि कैसे मरीजों से ज्यादा से ज्यादा पैसे ऐंठ लिए जाएँ। डॉक्टरी की पढ़ाई में उनके ऊपर जितना खर्च हुआ है, उस पैसे को असहाय मरीजों से वसूल लेना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। पैसा ही वह केन्द्र-बिन्दु बन गया है जिसके इर्द-गिर्द पूरी दुनिया घूम रही है। इंसानियत हाशिये पर चली गई है।

कितनी भयानक बात है कि पैसे की अंधी हवस सबसे मानवीय कर्म में लगे लोगों को अमानवीय बना रही है। यह व्यवस्था मानवद्रोही हो चुकी है। इसका एक-एक दिन हमारे लिए भारी है। इसका नाश हमारे अस्तित्व की शर्त है। और इसके

लिए नौजवानों को ही आगे आना होगा क्योंकि नौजवान ही वह प्रेरणशक्ति है, जिस पर भविष्य की उम्मीदें टिकी हुई हैं, वही मानवता को मुक्ति दिला सकता है, इसलिए हमें, अपने छिछले स्वार्थ और निजी कैरियवाद की खोल से बाहर आना होगा और एक बेहतर समाज की नींव डालनी होगी।

## ‘सर! आप क्या बेच सकते हैं?’

● गीतिका, इलाहाबाद

‘क्या उस मंजिल तक पहुँचूँगी कभी...’ उधर सानिया मिर्जा ने शुरुआती सफलता के कदम रखे, इधर उनके विज्ञापनों की भीड़ लग गयी। मंजिल यह थी कि वे ‘ब्राण्ड एम्बेसडर’ बनीं, एक ऐसी कम्पनी की जिसकी विश्व में मात्र दो या तीन नामी-गिरमी टेनिस स्टार ब्राण्ड एम्बेसडर हैं।

बिग बी का जो हाल है ‘सर्वत्र विद्यमान’। बीच की उनकी कुछ घटिया फिल्मों से खोयी छवि जब उन्हें केबीसी के जरिये पुनः हासिल हुई, तब से अभी तक आप कोई भी चैनल पलटिये, बच्चन जी कुछ बेचते हुए नजर आएँगे।

शायद कुछ लोगों को यह बात सामान्य-सी लगे। अरे विज्ञापन में काम करके कुछ प्रतिभावान लोग पैसा कमा रहे हैं तो उसमें गलत ही क्या है? लेकिन क्या प्रतिभाओं की महत्ता इसी में है कि हम उसे चीजों को बेचने में इस्तेमाल करें?

सचिन तेंदुलकर ने क्रिकेट में जो कीर्तिमान स्थापित किये सो किये, विज्ञापनों के भी कीर्तिमान स्थापित कर दिये हैं और आज के नये खिलाड़ियों में इरफ़ान पठान, वीरेन्द्र सहवाग और भज्जी भी उनके नक्शे-कदम पर चल रहे हैं।

कोई कुछ भी अच्छा करे, तो कुछ न कुछ बेचने में काम आएगा और ऐसा हो भी क्यों न, यह व्यवस्था ही तो बेचने-खरीदने पर टिकी हुई है।

अभी कुछ दिनों पहले टी.वी. के एक कार्यक्रम **इण्डियन**

**आइडल** ने काफी लोकप्रियता हासिल की। किस तरह वह मार्केट से जुड़ा है, वह तब दिखता है जब इस कार्यक्रम की एंकर एक प्रतियोगी से विज्ञापन का स्लोगन बोलने को कहती है और बाद में उसकी तारीफ़ करती है कि ‘काम इन्ही लोगों से कराना चाहिये!’ मतलब उसके अच्छा गा लेने तक तो ठीक था, पर वह तब हमारे लिए और अच्छा है जब वह विज्ञापन का स्लोगन अच्छे ढंग से बोल सके। क्या पता आगे वो गाना गाने का हुनर ही भूल जाये और बस विज्ञापनों के जिंगल ही याद रखे।

पूँजीवादी युग में आपकी उपयोगिता में चार-चाँद लग जाते हैं, अगर आप कुछ बेच सकें। चाहें अच्छे गायक होने के चलते, चाहे अच्छे एक्टर होने के चलते; और अगर आप खिलाड़ी हैं तब तो कहने ही क्या! बस आप अच्छा खेलते रहिये और बेचते रहिये।

सिर्फ विज्ञापनों की बात नहीं है, मार्केट वैल्यू का प्रकोप हर जगह व्याप्त हैखबरों में भी और फिल्मों में भी! आजकल पत्रकारिता का प्रशिक्षण भी इसी रूप में दिया जाता है कि तुम्हारी रिपोर्ट या लेख इस तरह का हो जो बाजार में बिके। उसी हिसाब से तुम्हारी मार्केट वैल्यू होगी। नतीजतन फूहड़ खबरों को मिर्च-मसालों के साथ परोसा जाता है और उसमें अधिक सतहीपन और संवेदनहीनता होती है। सच्चाई और गम्भीरता से आज के अखबारों का दूर-दूर का नाता नहीं है। यही हाल फिल्मों का है ‘सार्थक सिनेमा’ की बात पुरानी पड़ चुकी है। फिल्मों समाज में इंसानियत के मूल्यों को बढ़ावा दें, यह बात अब बड़ी बेतुकी सी लगती है। फिल्म बनाने वाले का एक ही मकसद हैलागत से अधिक वसूली। उसके लिए वो कोई भी घटिया से घटिया पब्लिसिटी स्टण्ट अपना सकता है, उसे कहानी या थीम की कोई जरूरत नहीं।

आज के सतही समाज में गुणवत्ता नहीं ‘मोल’ प्राथमिक है। यह पूँजीवादी समाज की नियति है कि उसने हर इंसानी प्रतिभा को बिकाऊ बना दिया है। यहाँ तक कि इंसान को भी बिकाऊ बना दिया है।

## शासन-प्रशासन तंत्र की आपराधिक संवेदनहीनता

(पेज 50 से आगे)

कोई कारगर ढाँचा खड़ा ही नहीं हो सकता। नौकरशाही और चिकित्सकों की संवेदनहीनता और धनपिपासा को नैतिक सदुपदेशों से न तो दूर किया जा सकता है और न ही मौजूदा निरंकुश राजनीतिक सत्ता तंत्र से यह उम्मीद की जा सकती है कि वह जनता की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ न करे। मौजूदा उत्पादन प्रणाली और शासन प्रणाली का खात्मा ही अब वह रास्ता है जिस पर चलकर गरीब मेहनतकश जनता जब अपनी सत्ता कायम करेगी, केवल तभी जनस्वास्थ्य का एक कारगर व संवेदनशील ढाँचा खड़ा किया जा सकता है। जब ऐसा समाज बनेगा जो मुनाफे के लिए उत्पादन पर नहीं वरन लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन की बुनियाद पर खड़ा होगा तभी आम

जनता के स्वास्थ्य की देखभाल राज्य की जिम्मेदारी बन सकेगी। पिछली सदी में रूस, चीन जैसे देशों में जब मेहनतकशों की सत्ताएँ कायम थी, सच्चा समाजवाद जिन्दा था, तब वहाँ जनता की स्वास्थ्य रक्षा राज्य की जिम्मेदारी बना दी गयी थी और जनता का जन्मसिद्ध अधिकार। व्यापक जन अभियान चलाकर उन सत्ताओं ने तमाम महामारियों और आम बीमारियों से समूची जनता को निजात दिला दी थी। यही कारण था कि इन समाजों में शिशु मृत्यु दर घट गयी थी और लोगों की औसत आयु में भी आश्चर्यजनक बढ़ोत्तरी हुई थी। इन समाजों के उदाहरण स्वयं यह रास्ता दिखाते हैं कि हमें किस राह पर चलना चाहिए।

(‘बिगुल’ से साभार)

## संसदीय बातबहादुरों के कारनामे

(पेज 18 से आगे)

दिया। वह भूल गई कि इसी कांग्रेस ने 1984 में सिखों का कल्लेआम करवाया था, इसी के राज में रामजन्मभूमि का ताला खुला था और शिलान्यास हुआ था और बाबरी मस्जिद ढहाई गई थी, और वह वक्तन-जरूरतन हिंदू कार्ड खेलने से नहीं हिचकिचाती। लेकिन ताज्जुब कैसा जबकि “वक्त पड़ने पर गधे को भी बाप बना लो” की कहावत इन संसदीय बातबहादुरों का सूत्रवाक्य बनी हुई हो।

जब भूमण्डलीकरण की रफ़्तार तेज थी तो लगने लगा था कि ऐसे नकली मार्क्सवादियों की जरूरत बुर्जुआ राजनीति में समाप्त हो जाएगी। लेकिन विश्व पूँजीवाद के थिंक टैंक्स को यह बात जल्दी ही समझ में आ गई कि एन.जी.ओ. और नकली वामपंथ जैसे कुछ सेफ्टी वालों की जरूरत अभी लम्बे समय तक बनी रहेगी। नतीजतन, यूरोप, एशिया और अफ्रीका में नकली वामपंथ के नए-नए रूप पैदा हो रहे हैं। नकली वामपंथ पूँजीवादी व्यवस्था की एक सुरक्षा पंक्ति का काम कर रहा है। यह उदारीकरण की बेलगाम होती प्रक्रिया में स्पीड ब्रेकर का काम इस व्यवस्था के दूरगामी हित में कर रहा है। यह लाल मिर्च खाकर “विरोध-विरोध” की रट लगाने वाले तोते हैं। ये तब तक शोर मचाते रहेंगे जब तक जनता के युवा अगुआ दस्ते इस जालिम व्यवस्था के साथ-साथ इनकी गर्दन भी न मरोड़ दें।

## प्रधानमंत्री महोदय की

### अमेरिका-यात्रा

(पेज 18 से आगे)

से सम्बन्ध रखकर अपना हित साधने में माहिर है। इस बात से कोई इंकार नहीं है कि साम्राज्यवाद पर उसकी आर्थिक निर्भरता है, लेकिन यह निर्भरता किसी एक साम्राज्यवादी देश पर नहीं है बल्कि पूरे विश्व साम्राज्यवाद पर है। वह किसी एक पर निर्भर होकर अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता पर खतरा मोल नहीं लेना चाहता और इसलिए वह विश्व पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के अलग-अलग धड़ों पर अपनी आर्थिक निर्भरता के बीच इतनी कुशलता से तालमेल करता रहा है कि उसकी निर्णय लेने की क्षमता बरकरार रहे। इसीलिए वह विश्व पूँजीवाद का दलाल नहीं बल्कि ‘जूनियर पार्टनर’ की भूमिका में है और इसी कारण से प्रधानमंत्री महोदय को अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, जापान सभी महत्व दे रहे हैं। ये सभी जरूरत पड़ने पर थोड़ी बाँह भी मरोड़ते हैं। पर इतनी नहीं कि भारतीय पूँजीपति वर्ग प्रतिस्पर्द्धी खेमे के ज़्यादा करीब हो जाए और अपने पास लाने के लिए रियायतें भी देते रहते हैं।

अभिनव

## आह्वान यहां से प्राप्त करें

**उत्तर प्रदेश** ■ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ■ जनचेतना, 989, पुराना कटरा, यूनीवर्सिटी रोड मनमोहन पार्क, इलाहाबाद ■ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ■ जनचेतना स्टाल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8.30 तक) ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी. एच.यू. परिसर, वाराणसी ■ जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8) ■ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ ■ सत्यम वर्मा, 29, यू.एन.आई. अपार्टमेंट, सेक्टर-11, जी.एच.-2, वसुंधरा, गाजियाबाद

**उत्तरांचल** ■ जनचेतना, भदईपुरा, प्राइमरी स्कूल के पास, किच्छा रोड, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर

**दिल्ली** ■ अभिनव सिन्हा, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली ■ गीता बुक सेंटर, जे.एन.यू. ■ बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, मंडी हाउस

**हरियाणा** ■ पंकज, प्लॉट नं. 33, सेक्टर 15, सोनीपत

**बिहार** ■ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ■ रामनारायण राय, द्वारा राघव पटेल कपड़े की दुकान, साहेबगंज, पोस्ट करनौल, जिला-मुजफ्फरपुर

**बंगाल** ■ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ■ जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. जलपाईगुड़ी ■ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधाननगर, सिलीगुड़ी

**मध्य प्रदेश** ■ चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैंड, जगदलपुर, बस्तर

**महाराष्ट्र** ■ पीपुल्स बुक हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, मुंबई

**पंजाब** ■ सुखविन्दर, 154, ओम बेकरी के सामने, शहीद करनैल सिंह नगर, फेज़-3, पखोवाल रोड, लुधियाना

## भगतसिंह ने कहा



“हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाए रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति, अंग्रेज शासक या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता।”

(फाँसी से तीन दिन पूर्व भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव द्वारा फाँसी की बजाय गोली से उड़ाए जाने की माँग करते हुए पंजाब के गवर्नर को लिखे गए पत्र का एक अंश)

# विज्ञान और तर्क के उत्कट योद्धा

एच. नरसिम्हैया  
(1920-2005)



विश्वविद्यालयों में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं जो अपनी जवानी में आन्दोलनों में भाग ले चुके हों, जेल जा चुके हों, लेकिन जो अब यह कहते मिल जाएँगे, “अजी हमने भी सिद्धान्त का झोला बहुत ढोया है, आदर्श की ढफली खूब बजाई है, इससे कुछ नहीं मिलता।” ऐसे लोग आज भरा टिफिन लेकर दफ्तर जाते हैं और खाली टिफिन बजाते वापस आ जाते हैं और वे इससे काफी सन्तुष्ट हैं। लेकिन एक नस्ल ऐसे लोगों की भी होती है जो एक बार किसी सिद्धान्त और तर्क को अपनाते है तो जीवनपर्यन्त उसी के लिए जीते हैं। ऐसे ही एक व्यक्ति थे बंगलोर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति एच. नरसिम्हैया।

31 जनवरी, 2005 को लम्बी बीमारी के बाद नरसिम्हैया का निधन हो गया। वह अपनी आखिरी सांस तक युवा रहे। तर्कसंगतता, वैज्ञानिकता और शिक्षा के प्रति उनकी वचनबद्धता कभी नहीं चुकी। विज्ञान और तार्किकता को उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। वह सदा संजीदगी और सादगी से जिए। उनकी मृत्यु पर उनके छात्रों, स्कूली बच्चों जिनके बीच वह रहते थे, और उनके मित्रों के बीच शोक की लहर दौड़ गई। वे सभी इस व्यक्ति की आखिरी झलक के लिए आए जिसने उन्हें यह पूछना सिखाया था **क्यों?**

नरसिम्हैया का बचपन गरीबी में बीता था। गरीबी के कारण वे आठवीं के बाद नहीं पढ़ सके। मगर उनके हेडमास्टर ने पढ़ने के लिए उन्हें बंगलोर बुलाया शिक्षा के प्यासे नरसिम्हैया दो दिन पैदल चलकर बंगलोर पहुँचे। 1935 में उन्होंने नेशनल हाईस्कूल में दाखिला लिया और पुअर बायज होम में रहने लगे। 1936 में वह गांधी से मिले और तब से अपनी अंतिम सांस तक उन्होंने खादी पहना, लेकिन आर्थिक कारणों से। उनका कहना था कि मेरे ऐसा करने से एक गरीब गाँववाले को रोटी मिलती है। उन्होंने भौतिक विज्ञान से स्नातक और स्नातकोत्तर किया। फिर उन्होंने “भारत छोड़ो आंदोलन” में भाग लिया और जेलयात्राएँ भी कीं। 1945 में उन्होंने लेक्चरर के रूप में नेशनल कॉलेज में पढ़ाना शुरू किया जो लम्बे समय तक उनका घर बना रहा। वह बंगलोर विश्वविद्यालय के दो बार कुलपति बने।

लेकिन आज के समय एच. नरसिम्हैया की जो बात उनके प्रति हर युवा हृदय को सम्मान और आभार से भर देती है वह है धर्माधता, अंधविश्वास, ढकोसलों, और पाखण्ड के विरुद्ध उनके द्वारा लड़ी गई लड़ाई। आज जब किस्म-किस्म के बाबाओं, संतों और अम्माओं का घटाटोप छाया हुआ है, धर्मांध शक्तियाँ तर्क की हत्या कर डालने को आमादा हैं और आज के युवा तक भटककर इन ढकोसलों और पाखण्डियों के चक्कर में फँस रहे हैं, तो नरसिम्हैया की महानता उभरकर सामने आती है। उन्होंने तमाम धार्मिक पाखण्डियों और ओझाओं का पर्दाफाश किया था। बंगलोर विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में 1976 में उन्होंने चमत्कार व अंधविश्वास जाँच समिति बनाई और इसके सामने अपने चमत्कारों को साबित करने के लिए साई बाबा को बुलाया था, जिसे साई बाबा ने अस्वीकार कर दिया, जिसके कारण को समझा जा सकता है। 1967 में उन्होंने बंगलोर साइंस फोरम की स्थापना की। वह हमेशा छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टि और तार्किकता को प्रोत्साहित करते रहे। उन्होंने अगणित छात्रों को अंधविश्वासों से मुक्त कराकर वास्तव में एक पीढ़ी निर्माता का काम किया।

तर्क और विज्ञान के अतिरिक्त वह जनवाद के प्रति भी समर्पित थे। उन्होंने छात्रों के विरोध के अधिकार का सम्मान और समर्थन किया। नरसिम्हैया हर प्रकार के कट्टरपंथ के खिलाफ थे। जब कुछ छात्रों-शिक्षकों ने बांग्लादेश युद्ध के पहले अमेरिका के जहाजी बेड़े के बंगाल की खाड़ी में आने का समर्थन करने पर कानूनविद नानी पालकीवाला के समक्ष विरोध प्रदर्शन किया तो विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने नरसिम्हैया को इन छात्रों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए पत्र भेजा जो उस समय नेशनल कॉलेज के प्राचार्य थे। नरसिम्हैया ने वह पत्र फाड़ डाला और कहा कि अपना विरोध दर्ज कराने का अधिकार छात्रों को है और इस मामले में तो यह बिल्कुल जायज विरोध है।

आज जब बुद्धिजीवियों में मौकापरस्ती, पद-पुरस्कार की भूख भरी हुई है तो सादा और सिद्धान्तनिष्ठ जीवन बिताने वाले नरसिम्हैया एक मिसाल हैं एक ऐसे बुद्धिजीवी की, जो हमेशा युवा रहे और जिन्होंने हमेशा पाखण्ड और ढोंग के विरुद्ध तर्क, सत्य और विज्ञान का पक्ष लिया। तार्किकता के इस महान सिपाही को हमारा आखिरी सलाम।

u; h dye

## संदीप की कविताएँ

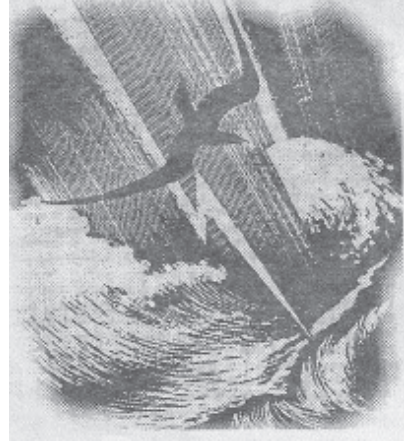
### स्वप्न की सवारी

सपनों के देश में  
आकांक्षाओं की पीठ पर  
यथार्थ की जीन में टिकाए अपने पैर  
जिन्दगी की राह पर  
सरपट दौड़ना, चाहता नहीं कौन?  
'आसमान बेधते' अरुणिम शिखर को  
हृदय में बसाना नहीं चाहता है कौन?  
मगर  
यांत्रिकता की कैद से  
आजाद नहीं होंगे जब तलक स्वप्न!  
स्मृतियों के अपने ही गुंजलक में  
भटकेगा मन!  
जड़ता नहीं टूटेगी जबतक  
अपने ही बिल में  
सिमटे रहेंगे स्वप्न!  
'अनुभूतियों का आवेग  
उड़ता रहेगा भाप बनकर निरर्थक'  
और अचानक एक दिन,  
अपने को पाएँगे उस जुलूस में  
जो हमारे ही सपनों को हमारे ही हाथों,  
जिन्दा दफ़नाने की तैयारी में है।

### उगो!!

उगो!  
उन दिलों में  
जहाँ व्याप्त हो  
शताब्दियों का घुप्प अँधेरा  
गोया, अमावस की रात में  
कौंध गयी हो बिजली-सी  
उगो! वहाँ,  
जहाँ जिन्दगी बन गयी हो  
अंतहीन मरुस्थल;  
उगो ऐसे कि,

जीवन के कलरव से  
गुंजायमान हो जाय यह धरा  
और आँख से उठ जाये  
घने अँधियारे का मोटा पर्दा;  
उगो!  
कि उग जाये  
हर दिल में उगने का साहस!  
उगो ऐसे कि  
उगा न हो कभी कोई जैसे  
और बन जाओ मिसाल  
अगली पीढ़ी के उगने वालों के लिए।



## नीतू की कविताएँ

### मुझे अगले शहर जाना है

आप पूछते हैं  
नया शहर कैसा लगा?  
अच्छा या बुरा?  
दरअसल सभी शहर  
एक जैसे ही होते हैं  
बड़े-बड़े  
छोटे-छोटे  
कड़वे-मीठे  
कभी तेज रोशनियाँ  
कभी अंधेरे का आगोश  
कभी शोर-भरी आवाजें

कभी चुप, खामोश  
तेज चलती मशीनें और आदमी धीमा  
सभी शहर एक जैसे होते हैं

जैसे-जैसे मेरे कदम,  
उस शहर में बहने लगते हैं,  
दिन और रात टकराने लगते हैं  
मेरी बागी साँसों की हवा  
वहाँ की हवा में घुलने लगती है  
वहाँ के लोग मुझे  
निकाल देने पर तुलने लगते हैं  
कानों कान कानाफूसी होती है  
आँखों आँख मेरी जासूसी होती है  
मेरे पहुँचने से पहले  
हर दहलीज के आगे  
प्रश्नचिन्ह

या  
ताला लगा होता है  
और मैं सोचती हूँ  
ऐसी दहलीज से लौट जाना ही अच्छा होता।  
मगर हर शहर में  
कोई बाँह पकड़ लेने वाला होता है  
“छोड़कर न जाओ”  
कहने वाला होता है  
मैं नहीं रुकती  
चल पड़ती हूँ  
और कहती हूँ  
“मुझे अगले शहर जाना है”  
वहाँ भी दिन और रात को  
आपस में टकराने लगना है  
वहाँ भी हवा को बागी बनाना है  
घण्टाघर की घड़ी को  
वक्त का अहसास कराना है  
मुझे अगले शहर जाना है।

## हाथों के होने का जश्न

हाथों को देखते,  
पालते,  
और सहलाते लोग

कभी नहीं मनाते  
हाथों के होने का जश्न  
मगर,  
हाथों को हिलाते,  
पत्थरों से टकराते  
लकीरें मिटाते लोग  
अक्सर ही मनाते हैं  
हाथों के होने का जश्न।  
वे हाथों को देख आँसू बहाते,  
सिगरेट जलाते  
रोटी का निवाला मुँह में डालते  
तकिये की जगह  
हाथों को सिर तले रखकर सो जाते  
और अक्सर ही मनाते,  
हाथों के होने का जश्न।

## बेबी की कविताएं

### प्रेमचंद से

आओ प्रेमचंद मेरे गाँव  
शोर मच रहा ठाँव-ठाँव  
चल रहे कुछ ऐसे दाँव  
कुम्हला रही निमिया की छाँव  
तुलसी से छूटा अपना गाँव।  
आओ प्रेमचंद मेरे गाँव।।

सड़क किनारे नित दम तोड़ें  
होरी के अरमान निराले  
उनकी बढ़ती जाए थाती  
हमारे रोटियों के भी लाले  
शंकर पर नित बढ़ते जाते  
सूदखोरों के दबाव  
आओ प्रेमचंद मेरे गाँव।।

अब भी घीसू वहीं जी रहा  
जीते जी है जहर पी रहा  
जिद करता है अब भी बेचन

पटक-पटक कर पाँव।  
बिन कंबल ही झेल रहा है  
हलकू अब भी पूस के दाँव  
आओ प्रेमचंद मेरे गाँव।

## सोचती हूँ

सोचती हूँ। किनारे बैठ लहरें गिनने से अब  
तौबा करूँ।  
तेरने के नाम पर तर्क करने से अब तौबा करूँ।  
डाल दूँ ये नाव अपनी, दो-दो हाथ करूँ तूफानों से,  
अथाह सागर की गहराइयों पर उलझने से अब  
तौबा करूँ।  
रात की काली नदी के पार है सूरज का डेरा,  
जानती हूँ!  
फिर तो रात की कठिनाइयों से डरने,  
झुंझलाने से मैं तौबा करूँ।  
चाँद, तारे, बहारों के किस्से कह-सुन लिए बहुत  
सोचती हूँ धूप की, कुछ धूल की बातें करूँ।  
ये फूल जो हैं हँस रहे और पत्तियाँ है हरी  
जिनकी बदौलत  
उस सर्वव्याप्त भूमिगत जड़-मूल की बातें करूँ।  
गति ही जीवन है और रुकना मौत है, जानती हूँ!  
तो फिर क्यों रुकूँ मैं? क्यों न आगे बढ़ चलूँ  
कुछ और नया ढूँढ़ लूँ।  
सोचती हूँ! गूँज रही जो चीख है उस पर लिखूँ,  
अमन, शान्ति, चैन पर लिखने से अब तौबा करूँ।  
सोचती हूँ! छोड़ दूँ एक राग ऐसा तोड़ दे जो  
मौन को, इस मौत-सी खामोशी को,  
प्राण, मन सुला दे ऐसे साज से तौबा करूँ।  
आँखों में लेकर सपने में अब आगे बढ़ूँ,  
कुछ देर रुककर बैठकर आराम अब मैं क्यों करूँ?

## पवन की कविता

### कोयला

कोयला काला  
कितना बेढंगा कितना खुरदरा  
सदियों से दबा-कुचला  
सख्त-कठोर  
लिए सुनसान चुप्पी  
भूरा और घुटा  
लेकिन अब इसके  
सुलगने के दिन हैं  
वे जो कल तक  
इसे खेतों से उठाकर  
राजधानियों में भरते रहे  
रेजना हज्रोंकी तादाद में  
इसे मालगाड़ियों में ढूस कर  
शहरों के प्लेटफार्मों पर पटकते रहे  
इसकी हड्डियों के पराक्रम  
को ईंधन के रूप में अपने कारखानों की  
भट्टियों में झोंकते रहे  
इसी के गर्म लहू की ऊष्मा से  
इसी को निचोड़ने के औजार गढ़ते रहे  
आज इसकी आँच में उनके  
पिघलने के दिन हैं  
वाष्पित होने के दिन हैं  
देर है तो बस  
इस काले-बेढंगे-खुरदरे  
कोयले तक  
चिनगारी पहुँचने की!

“अगर हम मानव इतिहास के आरम्भ में जायें तो हम पायेंगे कि अज्ञान और भय ने देवताओं को जन्म दिया; कि कल्पना, उत्साह या छल ने उन्हें महिमामण्डित या लांछित किया; कि कमजोरी उनकी पूजा करती है; कि अन्धविश्वास उन्हें संरक्षित रखता है, और प्रथाएँ, आस्था और निरंकुशता उनका समर्थन करती हैं ताकि मनुष्य के अन्धेपन का लाभ अपने हितों की पूर्ति के लिए उठाया जा सके।”

**बैरन द'होल्बाख (प्रबोधनकालीन फ्रांसीसी दार्शनिक)**

# स्मृति संकल्प यात्रा की शुरुआत का ऐलान



शहीदेआजम भगतसिंह के 98वें जन्मदिवस के अवसर पर 28 सितम्बर, 2005 के दिन शहीद पार्क, फ़िरोजशाह कोटला के ऐतिहासिक स्थान पर **नौजवान भारत सभा** और **दिशा छात्र संगठन** ने संकल्प दिवस मनाते हुए देश भर में भगतसिंह और उनके साथियों के क्रान्तिकारी विचारों को प्रचारित-प्रसारित करने की शपथ ली। यह स्मृति संकल्प यात्रा भगतसिंह के 75वें शहादत वर्ष के आरम्भ (23 मार्च, 2005) से लेकर उनके जन्म शताब्दी वर्ष के समापन (28 सितम्बर, 2008) तक के तीन वर्षों के दौरान देश भर में साईकिल यात्राएँ, पद यात्राएँ और जुलूस निकालने के साथ-साथ सांस्कृतिक टोलियों के देशव्यापी दौरों और विश्वविद्यालय परिसरों में भगतसिंह के विचारों पर गोष्ठियों, विचार-विमर्श चक्रों को आयोजित करेगी। इस दौरान भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेजों और अन्य क्रान्तिकारी साहित्य को पर्वों, पुस्तिकाओं और पुस्तकों के माध्यम से गाँव-गाँव में, शहरों में, विश्वविद्यालय परिसरों और कॉलेजों में, कारखानों और मजदूर बस्तियों में पहुँचाया जाएगा।

इस कार्यक्रम में दिल्ली, गाज़ियाबाद और नोएडा के छात्रों और युवाओं की टोलियाँ फ़िरोजशाह कोटला के उस ऐतिहासिक स्थल पर एकत्रित हुईं जहाँ हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन में परिवर्तित होने की घोषणा की गई थी। कार्यक्रम की शुरुआत शहीदों को समर्पित गीत 'कारवाँ चलता रहेगा' के साथ हुई।

दिशा छात्र संगठन के अभिनव ने सभा में कहा कि आज विश्वविद्यालयों के परिसरों से आम आदमी की सन्तानों को बाहर धकेला जा रहा है। अब परिसरों में खाते-पीते मध्यम वर्ग के लड़के-लड़कियाँ ही पहुँच पा रहे हैं, जिन्हें व्यवस्था में परिवर्तन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। लेकिन फिर भी इन सम्भ्रान्त जगहों से ऐसे इंसाफ़पसन्द और संवेदनशील नौजवान जनता के संघर्षों के साथ एकता बनाने के लिए और उनके सपनों और आकांक्षाओं में साझीदार बनने के लिए आगे आएँगे जो समझते हैं कि इतिहास ने छात्रों के कंधों पर क्या जिम्मेदारी रखी है, जिन्होंने अपना ऐतिहासिक कर्तव्य

याद रखा है और जो बस कैरियर की अन्धाधुंध दौड़ में शामिल भीड़ में गिना जाना पसन्द नहीं करेंगे।

नौजवान भारत सभा के तपीश ने कहा कि जैसे-जैसे विश्वविद्यालय खाते-पीते मध्य वर्ग के लोगों के लिए सीमित किए जा रहे हैं, वैसे-वैसे सिर्फ छात्र आन्दोलन की सम्भावनाएँ क्षीण होती जा रही हैं। अब छात्र आन्दोलन का अलग से कोई अस्तित्व हो पाना मुश्किल हो गया है। ऐसे में गरीबों की बस्तियों, औद्योगिक क्षेत्रों में फैली युवाओं की विशाल आबादी महत्वपूर्ण होती जा रही है। अब हम जिस चीज की कल्पना कर सकते हैं, वह है एक क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन। कोई भी आन्दोलन इस विशाल युवा महासमुद्र की अनदेखी करके व्यवस्था परिवर्तन की कल्पना नहीं कर सकता। तपीश ने सभा में मौजूद युवाओं से ऐसे एक छात्र-युवा आन्दोलन को खड़ा करने का आह्वान किया जो व्यापक मेहनतकश आबादी के साथ एकजुटता कायम करके एक ऐसी व्यवस्था के निर्माण की ओर आगे बढ़ेगा जिसका सपना भगतसिंह और उनके साथियों ने देखा था।

दिशा छात्र संगठन की लता ने कहा कि स्त्रियों की मुक्ति का प्रश्न सीधे-सीधे आम मेहनतकश आबादी की मुक्ति से जुड़ा हुआ है। जब तक स्त्री मुक्ति आन्दोलन आम मेहनतकश आबादी की मुक्ति की व्यापक परियोजना का अंग नहीं बनता तब तक हम अलग से स्त्री-पुरुष समानता का सपना नहीं देख सकते। लता ने कहा कि स्त्रियाँ तो दोहरी गुलामी की शिकार हैं। पूँजीवाद की गुलामी और साथ ही साथ पितृसत्ता की गुलामी। इसीलिए बगावत करने की जरूरत स्त्रियों को अधिक है।

नौजवान भारत सभा के आलोक ने 'भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की' नामक कविता का पाठ किया। 'विहान' सांस्कृतिक टोली द्वारा 'ये फैसले का वक्त है...' नामक समूह गान की प्रस्तुति की गई। कार्यक्रम का समापन इस संकल्प ग्रहण के साथ हुआ कि अगले तीन वर्षों के दौरान उपस्थित छात्र-युवा देश भर में क्रान्ति के सन्देश को पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे और एक नए क्रान्तिकारी नवजागरण का सूत्रपात करने के लिए देश की आम मेहनतकश जनता को जगाएँगे।

## दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रावासों में 'विहान' के सांस्कृतिक कार्यक्रम

'दिशा छात्र संगठन' की सांस्कृतिक टोली 'विहान' ने छात्रों के बीच फैले सांस्कृतिक घटाटोप के विरुद्ध मुहिम छेड़ते हुए हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रावासों में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की एक श्रृंखला शुरू की। यह अभियान अगस्त में शुरू हुआ और अभी भी जारी है। इस श्रृंखला में अब तक मानसरोवर छात्रावास, जुबली छात्रावास, कोठारी छात्रावास और दीलत राम कॉलेज छात्रावास के परिसरों में कार्यक्रम हो चुके हैं। छात्र-छात्राओं ने इन कार्यक्रमों को काफी सराहा और टोली को पूरा सहयोग और समर्थन दिया। इन कार्यक्रमों में टोली ने कुछ नुक्कड़ नाटकों और हिंदी, बांग्ला, भोजपुरी और अंग्रेजी गीतों की प्रस्तुति की। इसके साथ ही, टोली के सदस्यों ने छात्रों के सामने आज फैलाए जा रहे सांस्कृतिक कचरे के खिलाफ

एक मुहिम छेड़ने का आह्वान किया और यह संदेश दिया कि आज छात्र अलग-अलग रहकर अपना भविष्य नहीं बचा सकते।

'विहान' ने अपने गीतों और नाटकों के जरिए सपने देखने और ऊँची उड़ान भरने के लिए तमाम जिंदादिल नौजवानों का आह्वान किया। इन कार्यक्रमों को व्यापक प्रतिक्रिया मिली और छात्रों ने टोली से जुड़ने की इच्छा जताई।

## नौजवान भारत सभा की पुलिस दमन-विरोधी मुहिम

दिल्ली के किसी भी नुक्कड़ या चौराहे पर आपको दिल्ली पुलिस का यह बोर्ड नजर आ जाएगा "दिल्ली पुलिस-सदैव आपके साथ"। लेकिन हिरासत होने वाली मौतों की बढ़ती संख्या दिल्ली पुलिस के इस दावे की खिल्ली उड़ाते दिखती है। गत 15 मार्च को केशवपुरम थाने में एक मजदूर की पुलिस हिरासत में मौत हो गई। पुलिस ने दावा किया कि परमेश्वर दयाल नाम का यह मजदूर बाथरूम में करेंट लगने से मरा है और यह आत्महत्या का मामला है। लेकिन सूत्रों का कहना है परमेश्वर दयाल की हत्या की गई थी। परमेश्वर एक डार्ड बनाने वाला मजदूर था जो अपने मालिक से अलग होकर अपना काम शुरू करने जा रहा था। इस पर उसका मालिक कुछ समय से धमकी दे रहा था। परमेश्वर के न मानने पर उसका अपहरण करवा दिया गया। फिर दिल्ली पुलिस उसके मालिक के साथ जाकर उसे मुम्बई से दिल्ली ले आई और अगले दिन थाने में उसकी मौत हो गई। जब पुलिस उसकी मौत की सूचना देने उसके घर गई तो मोहल्ले के नाराज लोगों ने उनकी एक मोटरसाइकिल और एक स्कूटर जला दी और पुलिस वालों की पिटाई की। इसके बाद पुलिस ने अपना रंग दिखाते हुए उस मोहल्ले के महिलाओं और बच्चों तक को दौड़ा-दौड़ाकर और घरों से निकाल कर मारा और कई लोगों को गिरफ्तार करके ले गई।

'नौजवान भारत सभा' ने इस पुलिसिया दमन के खिलाफ आवाज उठाते हुए 'पुलिस दमन विरोधी मुहिम' चलाई। नौभास ने माँग की कि परमेश्वर की हिरासत में हुई मौत की उच्चस्तरीय जाँच की जाए, दोषी पुलिस कर्मियों को तत्काल निलम्बित किया जाए और उन पर हत्या

का मुकदमा चलाया जाए, और परमेश्वर के मोहल्ले से गिरफ्तार लोगों को तत्काल रिहा किया जाए। इसके खिलाफ 17 मार्च की शाम को करावलनगर में एक जनसभा की गई। पुलिस को बेनकाब करते हुए पर्चा बांटा गया। फिर हस्ताक्षर अभियान चलाकर करीब दो हजार हस्ताक्षर वाला माँगपत्रक 21 मार्च को पुलिस आयुक्त मुख्यमंत्री उपराज्यपाल, अध्यक्ष मानवाधिकार आयोग, को सौंपा गया।

करावलनगर, दिल्ली की जनता ने इस मुहिम को अपना भारी समर्थन दिया। कुछ समय बाद शाहदरा में एक और हिरासती मौत हुई जिसके खिलाफ जनता का आक्रोश फूट पड़ा। भारी जन दबाव के चलते कुछ तबादले हुए और गिरफ्तार लोगों में से कुछ को रिहा कर दिया गया। लेकिन यह साफ है कि इन तबादलों और रिहाइयों से परमेश्वर को इंसाफ नहीं मिलेगा। जब तक इस व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक पुलिस का दमनकारी चरित्र बना रहेगा और कोई परमेश्वर आए दिन उसकी दरिन्दगी का शिकार होता रहेगा।।

## भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के 75वें शहादत वर्ष की शुरुआत पर जगह-जगह कार्यक्रम, साइकिल जुलूस और नुक्कड़ सभाएँ

23 मार्च 2005 के दिन भारत सिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहादत के 75 वर्ष पूरे हो गए। नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने इन शहीदों के सपनों का भारत बनाने के संकल्प दोहराते हुए जगह-जगह सांस्कृतिक कार्यक्रम, साइकिल जुलूस और नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया। नौजवान भारत सभा ने नोएडा में 23 मार्च को एक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। संसदीय लोकतंत्र की असलियत को सामने वाले नाटक 'हवाई गोले' का मंचन किया गया। इसके अलावा कई क्रान्तिकारी गीतों की भी प्रस्तुति हुई। क्रान्तिकारी उद्धरणों और कविताओं वाले पोस्टरों की एक प्रदर्शनी भी लगाई। यहाँ 'जनचेतना' ने प्रगतिशील पुस्तकों की एक प्रदर्शनी भी लगाई।

(पेज 48 पर जारी)

# शिक्षा में सुधार बनाम एनजीओकरण

भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में शिक्षा के साम्प्रदायीकरण की जो मुहिम चली उसे यूपीए सरकार के राज में रोकने और शिक्षा को नई दिशा देने का काफी शोर मचाया जा चुका है। लेकिन तमाम शोर-शराबे के बावजूद आज तक कुछ ठोस नहीं हुआ है। साम्प्रदायिक जहर से भरी पाठ्यपुस्तकें अब भी जारी हैं। जो कुछ हो रहा है, वह कई मामलों में इससे कम खतरनाक नहीं है।

‘बिन बोझ के शिक्षा’ के नारे के साथ एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और मॉडल पुस्तक निर्माण की योजना से तो ऐसा लग रहा है कि इससे जुड़े शिक्षाविद, शिक्षक और बृद्धिजीवी छात्रों का बोझ कम अपना बोझ ज्यादा कम करना चाह रहे हैं। प्रो. यशपाल जैसे वैज्ञानिक की अध्यक्षता में गठित 35 सदस्यों वाली राष्ट्रीय संचालन समिति और 21 राष्ट्रीय फोकस समूहों का गठन कर लोगों में उम्मीद पैदा की गयी थी कि बदलते हुए विश्व ज्ञान और शिक्षण प्रणाली के संदर्भ में कुछ सार्थक काम होगा और सूचनाओं के अम्बार के बदले ज्ञान, पुस्तकों और परीक्षाओं को लेकर नई अवधारणा सामने आयेगी। लेकिन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा की समीक्षा से उभरे विचारों ने इन समितियों की कई सीमाओं को उजागर कर दिया है जिसका अन्तिम स्वरूप तो तब सामने आयेगा जब देश की नई पीढ़ी के भविष्य को निर्मित करने वाली मॉडल पुस्तकें और पाठ्यक्रम तैयार हो जायेंगे।

आरम्भ में एनसीईआरटी के पाठ्यचर्या निर्माण के राष्ट्रीय फोकस समूहों में स्थानीय शिक्षाओं को नहीं के बराबर शामिल किया गया। इस घटना के बाद एन.सी.ई.आर.टी. के अकादमिक संगठन नासा ने आपसी सदस्यों की बैठक कर कृष्णकुमार के विरुद्ध एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें एक ओर यह आरोप लगाया गया कि निदेशक ने एन.सी.ई.आर.टी. के चार दशकों की शानदार अकादमिक परम्परा का अनादर किया है वहीं यह भी मांग हुई कि राष्ट्रीय फोकस समूहों में स्थानीय शिक्षकों को शामिल किया जाये तथा एन.जी.ओ.

तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय की अनावश्यक सहभागिता को खत्म किया जाये। इस प्रस्ताव का ड्राफ्ट केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह को सौंपा गया जिसके बाद एन.सी.ई.आर.टी. के अकादमिशियनों को बड़े पैमाने पर पाठ्यचर्या निर्माण समितियों में सम्मिलित किया गया।

सर्वप्रथम निदेशक कृष्ण कुमार के नेतृत्व में निर्मित पाठ्यचर्या निर्माण समितियों, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की नवीन रूपरेखा के कुछ हिस्से और भाषा शिक्षण के लिए निर्मित फोकस समूह के अग्रणी सदस्यों के स्वरूप पर ध्यान दिया जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि इस कारवाँ की मंजिल किस तरफ होगी। पहली बात तो यह कि निदेशक ने पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पुस्तक निर्माण का आधार दिल्ली प्रदेश के लिए एन.सी.ई.आर.टी. के माध्यम से अपने नेतृत्व में किये गये कार्य को बनाया है और बड़ी संख्या में लोगों को वहाँ से लाये हैं। उल्लेखनीय है कि एन.सी.ई.आर.टी. का पाठ एक प्रदेश के परिवेश को ध्यान में रखकर बनाया गया था और तथ्यों, अशुद्धियों को लेकर उसकी पुस्तकों की जबर्दस्त आलोचना भी हुई थी। जबकि एन.सी.ई.आर.टी. के पाठ-निर्माण में एक व्यापक दृष्टिकोण की जरूरत होती है।

इस दृष्टिकोण की पूर्ति के लिए निदेशक ने जिन लोगों को चुना है उनकी मुख्य भूमिका में अनेक ऐसे बुद्धिजीवी हैं जिनका प्राइमरी शिक्षा और शिक्षण की तकनीक एवं प्रणाली का कोई अनुभव और प्रकाशन नहीं है। मसलन हिंदी पाठ निर्माण की 6 से 12वीं कक्षाओं के लिए पुरुषोत्तम अग्रवाल मुख्य सलाहकार हैं जिनका ज्ञान विश्वविद्यालय के छात्र भी कम समझ पाते हैं। वहीं प्राइमरी स्तर के लिए मुकुल प्रियदर्शनी हैं, जो दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्रीराम कालेज के शिक्षा विभाग में भाषा विज्ञान पढ़ाती हैं। इसी समिति में दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के रीडर अपूर्वानन्द भी हैं जिनका स्कूली शिक्षा पर क्या कार्य है, संभवतः कृष्ण कुमार ही बता सकते हैं। हाल में चमत्कारिक ढंग से हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत भाषाओं

और उनके साहित्य के पाठ निर्माण के मुख्य सलाहकार राष्ट्रीय सहारा के सलाहकार संपादक और आलोचक नामवर सिंह बनाये गये हैं। वह एक साथ कितनी संस्थाओं को सहारा देंगे और क्या नवीनतम जोड़ेंगे, गौरतलब है। पूरे राष्ट्रीय फोकस समूहों में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से योग्यतम प्रतिनिधियों की खोज के बजाय ज्यादा स्थान दिल्ली विश्वविद्यालय को दिया गया है जहाँ से कृष्ण कुमार स्वयं एक अर्से तक जुड़े रहे हैं। तीसरी, केन्द्रीय संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह के निर्देशन में निर्मित हो रहे इस पाठ-आन्दोलन में उनके सहित सुदीप बनर्जी, कृष्ण कुमार, पुरुषोत्तम अग्रवाल, अशोक बाजपेयी आदि की लम्बी फेहरिस्त है।

इस सन्दर्भ में एक नैतिक सवाल यह भी पूछा जा रहा है कि नैतिकता कि दुहाई देने वाले कृष्ण कुमार ने महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की अनियमितताओं की जाँच समिति में होने के बावजूद अशोक बाजपेयी और अपूर्वानन्द को संस्थान की समितियों में क्यों रखा? या कम से कम उन्हें स्वयं उस समिति से हट जाना चाहिए था। अशोक बाजपेयी तो उसके कुलपति थे ही अपूर्वानन्द भी महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद पर थे।

पाठ निर्माण और अन्यान्य क्षेत्र में एन.सी.ई.आर.टी. की भावी भूमिका किस तरह महत्वपूर्ण होने जा रही है, यह जान लेना भी जरूरी है। आजादी के 58 साल के अनुभव के बाद साफ है कि सरकारों की समानता पर आधारित शिक्षा की लाख घोषणाओं के बावजूद प्राइवेट स्कूलों और निजी प्रकाशकों की महँगी व तोड़ी-मरोड़ी गई पाठ सामग्रियों के कारण शिक्षा क्षेत्र में भयावह विषमता और अराजकता बढ़ी है। मूल्य निर्माण का नतीजा तो सामने है। ऐसे में निदेशक का यह कहना कि एन.सी.ई.आर.टी. का काम किताब निर्माण का व्यवसाय नहीं है, शिक्षा में आगामी सुधारों का संकेत दे देता है।

निदेशक ने बड़े पैमाने पर एनजीओ के हस्तक्षेप को पाठ-निर्माण में केवल स्वीकार ही नहीं किया है बल्कि किताब बनाने-छापने

से लेकर पाठ्यक्रम बनाने आदि तक में भूमिका अदा करने का आह्वान किया है। हालाँकि नासा ने अर्जुन सिंह को दिये पत्र में एन.जी.ओ. के अनावश्यक हस्तक्षेप का कड़ा विरोध किया था, लेकिन इस दिशा में सक्रियता घटी नहीं है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की नवीनतम रूपरेखा में उपलब्ध विचार देखिए : “पिछले दशक की एक उल्लेखनीय घटना रही है शिक्षा से गैर सरकारी संगठनों और नागरिक समाज समूह से बड़े पैमाने पर जुड़ाव। गैर सरकारी संगठनों ने स्कूलों, शिक्षण-प्रशिक्षण, पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी, पाठ्य सामग्री के समुदाय में प्रचार-प्रसार करने में बड़ी भूमिका निभाई है। स्कूलों से उनका औपचारिक जुड़ाव, पाठ्यचर्या विकास, अकादमिक सहयोग, निरीक्षण और शोध के लिए आवश्यक है।” बात सिर्फ इतने पर ही नहीं ठहरी है। दो कदम और आगे बढ़कर सुझाव दिया गया है : “पाठ्य पुस्तकों को बढ़ावा देने के लिए जो अधिकाधिक तौर पर स्कूल द्वारा अनुमोदित हों, पाठ्यपुस्तक निर्माण में निजी क्षेत्र को बढ़ावा देंगे।...गैर सरकारी संगठनों ने काफी अच्छी पाठ्यपुस्तकें और सहायक सामग्री तैयार की है जिनका स्कूलों में उपयोग किया जा सकता है।”

स्कूली शिक्षा के पूरे ढाँचे में निजी क्षेत्र और एनजीओ की बड़ी भूमिका की मांग के पीछे की मंशा को समझा जा सकता है। कोई भी निजी संस्था या एनजीओ मुनाफे के लिए ही प्रकाशन चलायेगा और सरकार की तरह रियायत देना तो किसी के लिए भी सम्भव नहीं है, यह किससे छिपा है। लेकिन इससे भी बड़ी बात यह है कि समाज के प्रति किसी भी तरह की जवाबदेही से मुक्त एनजीओ को मनमाने ढंग से शिक्षा जैसे संवेदनशील क्षेत्र की विषयवस्तु तय करने का जिम्मा सौंपा जा रहा है। अनेक एनजीओ किस तरह पर्दे के पीछे से तय किये जाने वाले एजेंडे पर काम करते हैं यह कई मामलों में साफ हो चुका है। मजे की बात यह है कि अपूर्वानन्द और पुरुषोत्तम अग्रवाल प्रत्यक्ष-परोक्ष एनजीओ से जुड़े रहे

हैं। कहा जाता है कि एन.सी.ई.आर.टी. के उत्तर पूर्व क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान में प्रोफेसर, रीडर और प्रिंसिपल की तकरीबन 10 सीटों पर एनजीओ से जुड़े लोगों की बहाली के लिए ही विज्ञापित में इन पदों के लिए किसी तरह के अकादमिक अनुभव की माँग नहीं की गयी है।

इतने अन्तरविरोधों और संकटों के बीच यदि शिक्षाविद हिन्दी की जगह अंग्रेजी की वकालत और साहित्य के इतिहास एवं व्याकरण के अंत की बात कर रहे हैं तो हमें बड़े संकेत को समझ लेना चाहिए। बहुभाषिकता की बात नये पाठ निर्माण में केन्द्रीय मुद्दा बनी हुई है जिसमें भाषा के विभिन्न रूपों, मातृभाषा, बोलियों की बात तो समझ में आती है लेकिन इसकी ओट में पहली कक्षा से अंग्रेजी का समर्थन, वह भी हिन्दी की रोटी खाने वाले शिक्षकों के द्वारा समझ से परे की बात है। हिन्दी शिक्षक एवं लेखक अपूर्वानन्द का अंग्रेजी समर्थन में गोष्ठी में दिया तर्क दिलचस्प है। उनके विचार सुनिए : “गाँव-गाँव में अंग्रेजी के स्कूल पसर रहे हैं, हिन्दी प्रदेशों में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल कुकुरमुत्ते की तरह फैल रहे हैं...और सोसलियोजी ऑफ लिटरेचर से सम्बन्धित पुस्तकें एम.ए. (हिन्दी) के विद्यार्थी न पढ़ पाते हैं, न समझ पाते हैं। इसलिए अंग्रेजी पहली कक्षा से लेकर 12वीं कक्षा तक अनिवार्य होनी चाहिए।” हमें नहीं भूलना चाहिए कि आजाद भारत के केन्द्रीय विद्यालयों में 10वीं कक्षा तक हिन्दी मातृभाषा या द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य है। अब महज 8वीं कक्षा तक ही हिन्दी प्रदेशों में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जायेगी। बहुभाषिकता के नाम पर अब तक राष्ट्रभाषा व राजभाषा न बन पाने वाली हिंदी के संसार को संकुचित करना और इस बिन्हा पर अंग्रेजी का समर्थन साम्राज्यवाद के एजेंडे को आगे ले जाना नहीं है तो क्या है।

एक दिलचस्प परिघटना हिन्दी भाषा और साहित्य के संक्षिप्त इतिहास के 11वीं-12वीं कक्षा से अंत करने को लेकर

है और दूसरी व्याकरण शिक्षण को लेकर। अब तक विश्वनाथ त्रिपाठी द्वारा लिखित इतिहास 11-12वीं के छात्रों को पढ़ाया जाता था जिसको विगत संस्करण में काफी सरल कर दिया गया है। इतिहास चेतना के आलोचक नामवर सिंह की मुख्य सलाहकार का पद मिलते ही टिप्पणी थी कि इतिहास पढ़ाकर हमने जो भूल की इसके लिए क्षमा माँगता हूँ। पुरुषोत्तम अग्रवाल मानते हैं कि लेखक परिचय में ही थोड़ी बहुत जरूरी चीजें डाल दी जायेंगी। बोझ कम करने के नारे में फँसे ये लेखक इतिहास को रोचक, सरल और आस्वाद मूलक बनाने के बदले उसका अन्त करने पर तुले हैं। हाईस्कूल के छात्र अगर समाज, राष्ट्र और सभ्यता का इतिहास समझ सकते हैं तो साहित्य का इतिहास समझने में क्या दिक्कत है। दूसरी बात साहित्य के इतिहास से अलग साहित्यिक विधाओं का देरिदाई-फूकोआई पाठ हमारे देश की इतिहास-चेतना के लिए कितना अनर्थकारी है, इस बात पर ये गौर नहीं करते। कितनी हैरानी की बात है कि पहली से अंग्रेजी चाहिए पर 11वीं से साहित्य का इतिहास नहीं। व्याकरण शिक्षण को लेकर इन शिक्षकों का कहना है कि भाषा की शुद्धता और व्याकरण फिजूल की बोरिंग चीज है। बच्चे चाहे तो बाजार से खरीद कर पढ़ें।

पाठ की मुक्ति और खामोश इंकलाब के नाम पर हमें नहीं भूलना चाहिए कि पाठ-निर्माण अनुभवहीनता की कार्यशाला नहीं है। तीन साल की उम्र में पांच हजार शब्द भण्डार वाले छात्रों को हाईस्कूल से भाषा की व्यवस्था के लिए व्याकरण जरूरी है, जिसके बिना एक शुद्ध और मानक भाषा की कल्पना कठिन है। यह सच है कि एक सरल, वर्णनपरक और व्यावहारिक व्याकरण तैयार करना बहुत मुश्किल है और यह बच्चों के संग बिताये गये लम्बे अनुभव का परिणाम होगा।

(समयांतर, अगस्त 2005 में छपे **देवेश्वर नारायण** के लेख की संपादित प्रस्तुति)

#### (पेज 46 से जारी)

नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने दिल्ली के रोहिणी क्षेत्र में एक साईकिल जुलूस निकाला। साईकिलों के आगे क्रान्तिकारी नारों और भगतसिंह के उद्धरणों की तख्तियाँ लगी हुई थीं। नौभास

और 'दिशा' के कार्यकर्ताओं ने इस बीच नुक्कड़ों और चौराहों पर सभाएँ कीं और जनता को यह याद दिलाया कि जिस भारत का सपना भगतसिंह और उनके साथियों ने देखा था वह भारत अभी नहीं बना है और वह हर प्रकार के शोषण का खात्मा करके

ही बन सकता है। इसके अलावा नौभास और 'दिशा' के कार्यकर्ता अपना संदेश लेकर दिल्ली में डी.टी.सी. बसों, ट्रेनों और घर-घर में गए। ये बस और ट्रेन अभियान यह रिपोर्ट लिखे जाने के समय तक जारी थे और साल भर चलते रहेंगे।

# शासन-प्रशासन तंत्र की आपराधिक संवेदनहीनता ने छीन ली हज़ारों बच्चों की जिन्दगी

गोरखपुर। पूर्वी उत्तर प्रदेश इस बार फिर इंसेफेलाइटिस (मस्तिष्क ज्वर) की चपेट में है। यह टिप्पणी लिखे जाने तक (30 अगस्त तक) केवल बाबा राघव दास मेडिकल कालेज, गोरखपुर में 300 से अधिक बच्चों की मौतें हो चुकी हैं। मरीजों का भर्ती होना अभी जारी है। महाराजगंज, कुशीनगर, सिद्धार्थनगर, बस्ती, देवरिया आदि जिलों के जिला अस्पतालों और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में भी बीमार बच्चे लगातार भर्ती हो रहे हैं। यहाँ से भी बच्चों के मरने की खबरें लगातार आ रही हैं।

संजय गाँधी आयुर्विज्ञान संस्थान के डॉक्टरों की टीम के साथ जापानी बुखार से प्रभावित इलाकों का दौरा करने के बाद संस्थान के माइक्रोबाइलॉजी विभाग के प्रोफेसर टी.एन.ढोले ने कहा है कि इस बीमारी से मरने वाले बच्चों की संख्या दस हजार तक हो सकती है। ज्यादातर मौतें गाँवों में और निजी डाक्टरों के यहां हो रही हैं जिनकी कोई गिनती सरकारी आंकड़ों में नहीं है। अखबारों के मुताबिक सिर्फ कुशीनगर जिले के एक इलाके में 150 से अधिक बच्चों की लाशें बूढ़ी गंडक में बहाई जा चुकी हैं। जाहिर है कि इस बीमारी का शिकार होने वालों में ज्यादातर बेहद गरीब लोग हैं।

पूर्वांचल में आज से 27 साल पहले ही इस बीमारी ने दस्तक दे दी थी जब 100 से अधिक बच्चों को अपनी जिन्दगी गँवानी पड़ी थी। तब से लेकर आज तक कई सरकारें आयी-गयीं लेकिन इसकी रोकथाम के लिए कोई कारगर उपाय नहीं किया गया। इस दौरान सरकारें ढपोरशंखी घोषणाएँ करती रहीं, नौकरशाही इस बीमारी से निबटने के नाम पर आवंटित धन भकोसती रही, तमाम चुनावी पार्टियों के नेता बच्चों की लाशों पर सियासत करते रहे! नतीजा यही सामने आना था। व्यापक टीकाकरण अभियान चलाकर जिस बीमारी का समूल नाश किया जा सकता था वह आज महामारी का रूप धारण कर चुकी है। शासन-प्रशासन तंत्र की आपराधिक संवेदनहीनता के चलते हर साल सैकड़ों बच्चों की मौतें हो जाती हैं। ये साधारण मौतें नहीं हल्याएँ हैं जिसकी जिम्मेदारी सरकारों और आला अफसरों के सिर पर जाती है।

विगत 30 अगस्त को गोरखपुर मेडिकल कालेज के इंसेफेलाइटिस वार्ड में भर्ती मरीजों की जाँच के लिए डॉक्टरों की टीम के साथ आये प्रोफेसर टी.एन.ढोले तक ने स्थानीय पत्रकारों से बातचीत में कहा कि बच्चों की मौतें साधारण मौतें नहीं हैं।

उन्होंने यहाँ तक कहा कि यह बच्चों की हत्या है जिसकी जाँच के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश और मानवाधिकार आयोग के चेयरमैन को बुलाया जाना चाहिए और इस आपराधिक कृत्य के लिए जिम्मेदार लोगों को बख्शा नहीं जाना चाहिए।

प्रो. ढोले देश की पूँजीवादी शासन प्रणाली व न्याय व्यवस्था के बारे में भ्रमों के शिकार हो सकते हैं लेकिन उनके द्वारा कही गयी बातों की सच्चाई से कोई इन्कार नहीं कर सकता। उन्होंने यह भी कहा कि इस रोग से प्रभावित मरीजों की ठीक-ठीक संख्या का

## पूर्वी उत्तर प्रदेश में इंसेफेलाइटिस का कहर

- पिछले 27 वर्षों में हजारों बच्चों की मौत
- “यह सामान्य मृत्यु नहीं हत्या है!”
- मेडिकल कालेज में न वाइरोलाजी लैब, न ही जाँच की व्यवस्था
- सरकारें आती-जाती रहीं पर टीकाकरण अभियान नहीं चल सका

पता तो नहीं लगाया जा सकता लेकिन उनका अनुमान है कि एक लाख से अधिक लोग इससे प्रभावित हैं। इनमें बच्चों की संख्या अधिक है और इन बच्चों में भी कुपोषित और दुर्बल बच्चों की संख्या अधिक है।

यही सच्चाई है। इंसेफेलाइटिस से पीड़ित होने वाले अधिकांश बच्चे गरीबों के ही हैं। इसका कारण भी बहुत साफ है। यह बीमारी मच्छरों के काटने से फैलती है जो ठहरे हुए पानी में और गन्दे स्थानों पर पलते हैं। समझा जा सकता है कि गाँवों और शहरों की गन्दी बस्तियों में रहने वाली आबादी जापानी इंसेफेलाइटिस के विषाणुओं के वाहक मच्छरों के लिए आसान शिकार हैं। यही असल कारण भी है कि क्यों शासन-प्रशासन तंत्र पिछले 27 सालों से इसके रोकथाम के कारगर उपाय नहीं कर रहा है। पूँजीपतियों और अमीरों की सेवा में दिन-रात जुटी रहने वाली शासन-प्रशासन की मशीनरी के लिए गरीबों की जान की कोई कीमत ही नहीं है।

चुनावी पार्टियों के लिए गरीब आबादी वोट बैंक के सिवा कुछ नहीं है। इसीलिए जब इस बीमारी का हमला शुरू हो जाता है और हर रोज मौतों की खबरें आनी शुरू होती हैं तो अखबारी बयानबाजियाँ और एक दूसरे पर तोहमतें मढ़ने का खेल शुरू हो जाता है। फिर मौसम बदलते ही उनकी सारी चीखपुकार अगले मौसम तक के लिए शान्त हो जाती है। सरकारी सक्रियता भी बीमारी का प्रकोप शुरू होने पर और हल्ला मचने पर कुछ समय के लिए दिखायी पड़ता है। इस बार भी यही हो रहा है। केन्द्र और प्रदेश सरकार के मंत्रियों और अफसरों के दौरे हो रहे हैं, स्वास्थ्य विभाग के अफसरों-कर्मचारियों को डॉट-फटकार पिलायी जा रही है, बीमारी से निबटने के लिए टीकाकरण अभियान चलाने के ऐलान हो रहे हैं। वही हर बार दुहराया जाने वाला अश्लील नाटक। सरकार के नुमाइन्दों और आला अफसरों के

दौरों के साथ गोरखपुर मेडिकल कालेज प्रशासन भी सब कुछ ठीक-ठाक होने और व्यवस्था दुरुस्त दिखाने की कवायदों में जुटा रहता है। जबकि असलियत यह है कि खुद मेडिकल कालेज में ही गन्दगी का ढेर पड़ा रहता है, गड्डों में पानी जमा रहता है। हद तो तब हो जाती है जब प्रदेश की मुख्य सचिव नीरा यादव के दौर के समय मेडिकल कालेज प्रशासन अपनी मुस्तैदी दिखाने के लिए मर चुके बच्चे को ऑक्सीजन देने का नाटक करता है। मृतक बच्चों के परिजनों के विलाप और आर्तनाद साहब लोगों को सुनायी न दें, इसका पक्का इन्तजाम किया जाता है। इन सब कवायदों के बीच हर रोज एक दर्जन से अधिक बच्चों की मौतें होती रहती हैं।

गोरखपुर मण्डल के एकमात्र प्रतिनिधि मेडिकल कालेज में सुविधाओं का आलम यह है कि मरीजों को भर्ती करने के लिए पर्याप्त वार्ड ही नहीं हैं। इंसेफेलाइटिस का पता लगाने के लिए होने वाली विशेष प्रकार की खून की जाँच की कोई व्यवस्था कालेज में नहीं है। इसके लिए जरूरी उपकरण एवं बुनियादी ढाँचा तक पिछले 27 सालों में विकसित नहीं हो पाया। प्रदेश के पूर्व राज्यपाल विष्णुकान्त शास्त्री ने मेडिकल कालेज में जरूरी उपकरणों की खरीद और बुनियादी ढाँचे के विकास के नाम पर 73.60 लाख रुपये दिये थे लेकिन उपकरणों की खरीद में कमीशन की बन्दरबाँट का मामला न सुलट पाने के कारण फाइलें गोरखपुर मेडिकल कालेज, लखनऊ मेडिकल कालेज और प्रदेश के स्वास्थ्य विभाग में दौड़ती रहीं। जब फिर इस साल इंसेफेलाइटिस का कहर बरपा हुआ और कुछ अखबारों ने इस बाबत जानकारी इकट्ठा की तो पता चला कि इस मद का अधिकांश पैसा खर्च हो चुका है पर गोरखपुर मेडिकल कालेज में सुविधाओं के नाम पर कुछ नजर नहीं आता।

इंसेफेलाइटिस का प्रकोप गोरखपुर मण्डल के महाराजगंज और कुशीनगर जिलों में सर्वाधिक है। जब गोरखपुर मेडिकल कालेज की यह दुरवस्था है तो इन जिलों के जिला अस्पतालों और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की हालत के बारे में क्या कहा जाये। सभी जानते हैं कि सरकारी अस्पतालों में पहले जो सुविधाएँ और दवाएँ उपलब्ध थी वे भी लगातार कम होती जा रही हैं। यह स्वास्थ्य सुविधाओं का निजीकरण करने की सरकारी नीतियों का नतीजा है। दूर-दराज के गाँवों के गरीब यातायात के साधनों के अभाव और आर्थिक तंगी के कारण समय पर मेडिकल कालेज या जिला अस्पताल पहुँच नहीं पाते। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर समय पर डाक्टर जब उपलब्ध नहीं होते तो एम्बुलेंस की सुविधा मौजूद होने के बारे में सोचा ही नहीं जा सकता। नतीजतन जब बीमार बच्चे मेडिकल कालेज पहुँचते हैं तो ज्यादातर मामलों में बीमारी बेकाबू हो चुकी होती है। जिनके बचने की थोड़ी-बहुत उम्मीद होती है वे असंवेदनशील और आपराधिक हदों तक लापरवाही करने वाले डाक्टरों की भेंट चढ़ जाते हैं। आखिर ये डाक्टर भी तो उसी बाजार और मुनाफे के तंत्र के ही हिस्से हैं। यह तंत्र संवेदनशील और मानवतावादी चिकित्सकों को भी लगातार संवेदनहीन बनाता रहता है। इसी प्रक्रिया में ऐसे डाक्टर भी पैदा हो जाते हैं जो कफनखसोटों की जमात में शामिल हो जाते हैं।

पूर्वांचल में इस साल इंसेफेलाइटिस का कहर पिछले सालों

की तुलना में कई गुना प्रचण्ड रूप धारण कर आया है। यह महामारी जैसा रूप धारण कर चुका है। इसलिए स्थानीय अखबारों में चर्चाएँ भी पिछले सालों के मुकाबले अधिक हुईं। चुनावी सियासत के खेल में पिछड़ने के डर से इस बार मुलायम सरकार ने इसकी रोकथाम के लिए व्यापक उपायों की घोषणाएँ की है। नवम्बर में व्यापक टीकाकरण अभियान शुरू करने की घोषणा की गयी है। प्रदेश सरकार के अनुरोध पर केन्द्र सरकार ने 75 लाख टीके उपलब्ध भी करा दिये हैं। मेडिकल कालेज को भी सुविधासंपन्न बनाने के लिए फण्ड की कमी नहीं होने देने का दावा किया गया है। लेकिन यह मौसमी सक्रियता आगे भी जारी रहेगी इसकी गारण्टी कैसे होगी? सरकारी तंत्र वही, नौकरशाही वही, स्वास्थ्य विभाग वही ज्ययादा सम्भावना यही है कि फिर वही ढाक के तीन पात होंगे। इसके पहले चले टीकाकरण अभियान कागजों पर ही चले हैं इसका सबूत यह है कि कागजों पर जिन जगहों पर टीकाकरण अभियान चलाना दर्शाया गया है वहाँ से भी इंसेफेलाइटिस के मरीज सामने आये हैं।

इस बीमारी का प्रकोप जुलाई से अक्टूबर माह तक होता है। जो स्वास्थ्य विभाग इस समय जगह-जगह मच्छरों को मारने वाले रसायनों का छिड़काव करता दिखायी दे रहा है वह अब तक कुम्भकर्णी नदी क्यों सोया हुआ था। यह सवाल भी भविष्य के बारे में आश्वस्त नहीं होने देता। इसके साथ ही कुछ विशेषज्ञ चिकित्सक टीकाकरण अभियान की तकनीकी-चिकित्सकीय खामियों की ओर भी इशारा कर रहे हैं। इनका कहना है कि मनुष्यों के साथ ही उन पशुओं को भी टीकाकरण अभियान का लक्ष्य बनाया जाना चाहिए जो जापानी इंसेफेलाइटिस के विषाणु के 'स्टोर हाऊस' हैं, जैसे सुअर। विषाणुओं के वाहक मच्छर मनुष्यों को काटने से पहले जब सुअर को काटते हैं तभी इंसेफेलाइटिस के विषाणु मनुष्य के रक्त के सहारे उसके मस्तिष्क में पहुँचते हैं। इसके पहले विषाणुओं का जीवन-चक्र पूरा नहीं होता। लेकिन जिस टीकाकरण अभियान की घोषणा की गयी है उसमें पशुओं को टीका लगाने की बात नहीं है। यह अपने आप में टीकाकरण अभियान की कारगरता पर सवाल है।

और सवाल सिर्फ इंसेफेलाइटिस का नहीं है। सवाल जनस्वास्थ्य के समूचे ढाँचे का है। सोचने की बात है कि एड्स जैसी बीमारियों का हौवा खड़ा करने के लिए तमाम सरकारी व गैरसरकारी एजेंसियां जितने पैसे बहाती हैं वे आम लोगों को आम तौर पर होने वाली उन साधारण बीमारियों जैसे टी.बी., खूनी पेशिश, काला जार आदिकी रोकथाम और उपचार के सवालों से आँखें क्यों मूँदे रहती हैं। निजीकरण के मौजूदा दौर में अब इस बारे में सोचना भोलापन होगा कि सरकारें जन-स्वास्थ्य का कोई व्यापक और कारगर ढाँचा खड़ा करने की दिशा में कदम उठाएंगी। मौजूदा पूँजीवादी ढाँचे में हर चीज की तरह मनुष्य का स्वास्थ्य भी बाजार की राक्षसी शक्तियों के हवाले है। चिकित्सा शिक्षा से लेकर अस्पतालों और अन्य सेवाओं तक हर क्षेत्र में मुनाफे का खेल है। इसलिए यह समझना कठिन नहीं है कि अब जनस्वास्थ्य के ढाँचे का सवाल भी पूँजीवादी आर्थिक ढाँचे और उसकी बुनियाद पर खड़े शासन के ढाँचों के रहने-न रहने के साथ जुड़ गया है। जब तक यह ढाँचा बरकरार रहेगा जनस्वास्थ्य का

(पेज 39 पर जारी)



## प्रेमचंद के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर

जब तक सम्पत्ति मानव  
समाज के संगठन का आधार

है, संसार में अन्तरराष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। राष्ट्रों-राष्ट्रों की, भाई-भाई की, स्त्री-पुरुष की लड़ाई का कारण यही सम्पत्ति है। संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गॉठ है। जबतक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव-समाज का उद्धार नहीं हो सकता। मजदूरों के काम का समय घटाइये, बेकारों को गुजारा दीजिए, जमींदारों और पूँजीपतियों के अधिकारों को घटाइये, मजदूरों-किसानों के स्वत्वों को बढ़ाइये, सिक्के का मूल्य घटाइये, इस तरह के चाहे जितने सुधार आप करें, लेकिन यह जीर्ण दीवार इस तरह के टीपटाप से नहीं खड़ी रह सकती। इसे नये सिरे से गिराकर उठाना होगा। ...संसार आदिकाल से लक्ष्मी की पूजा करता चला आता है।... लेकिन संसार का जितना अकल्याण लक्ष्मी ने किया है, उतना शैतान ने नहीं किया। यह देवी नहीं डायन है।

सम्पत्ति ने मनुष्य को क्रीतदास बना लिया है। उसकी सारी मानसिक आत्मिक और दैहिक शक्ति केवल सम्पत्ति के संचय में बीत जाती है। मरते दम तक भी हमें यही हसरत रहती है कि हाय, इस सम्पत्ति का क्या हाल होगा। हम सम्पत्ति के लिए जीते हैं, उसी के लिए मरते हैं। हम विद्वान बनते हैं सम्पत्ति के लिए, गेरुए वस्त्र धरण करते हैं सम्पत्ति के लिए। घी में आलू मिलाकर हम क्यों बेचते हैं? दूध में पानी क्यों मिलाते हैं? भाँति-भाँति के वैज्ञानिक हिंसा-यंत्र क्यों बनाते हैं? वेश्याएँ क्यों बनती हैं, और डाके क्यों पड़ते हैं? इसका एकमात्र कारण सम्पत्ति है। जब तक सम्पत्तिहीन समाज का संगठन नहीं होगा, जब तक सम्पत्ति व्यक्तिवाद का अन्त न होगा, संसार को शान्ति न मिलेगी।

प्रेमचंद

(‘राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता’ लेख से)

“अब क्रान्ति में ही देश का उद्धार है, ऐसी क्रान्ति जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धान्तों और परिपाटियों का अन्त कर दे। जो एक नए युग के प्रवर्तक को, एक नई सृष्टि खड़ी कर दे, जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिकने वाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे।”

प्रेमचंद (‘कर्मभूमि’)

आम लोगों के लिए  
ज़रूरी हैं वे किताबें  
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन  
और मुक्ति के स्वप्नों तक  
पहुँचाती हैं विचार  
जैसे कि बारूद की ढेरी तक  
आग की चिनगारी।

# जनचेतना

‘परिकल्पना प्रकाशन’ और  
‘राहुल फाउण्डेशन’ की पुस्तकों के मुख्य वितरक  
परिकल्पना प्रकाशन की नई किताबें

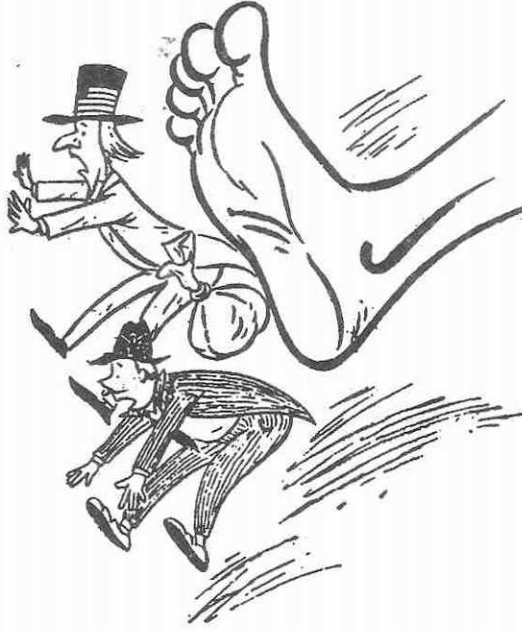
1. दोन की कहानियाँ	शोलोखोव	35.00
2. दुश्मन (नाटक)	गोर्की	35.00
3. एक तयशुदा मौत (उपन्यास)	मोहित राय	25.00
4. चम्पा और अन्य कहानियाँ	मदन मोहन	35.00
5. षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच कात्यायनी (साम्प्रदायिकता विरोधी लेख)		25.00
6. राख अँधेरे की बारिश में (कविताएँ)	कात्यायनी	15.00
7. इस रात्रि श्यामला बेला में	सत्यव्रत	30.00
8. इन्तिफादा : फलस्तीनी कविताएँ		30.00
9. नौजवानों से दो बातें	पीटर क्रोपोटकिन	5.00

राहुल फाउण्डेशन की नई किताबें

1. गोथा कार्यक्रम की आलोचना	माक्स	10.00
2. क्या करें?	लेनिन	30.00
3. वामपंथी कम्युनिज्म एक बचकाना मर्ज	लेनिन	15.00
4. गद्दार काउत्स्की	लेनिन	15.00
5. जनता के बीच पार्टी का काम	लेनिन	30.00
6. धर्म के बारे में	लेनिन	20.00
7. समाजवाद वैज्ञानिक तथा काल्पनिक	एंगेल्स	12.00
8. लेनिनवाद के मूलभूत सिद्धान्त	स्तालिन	15.00
9. माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन		70.00
10. कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में माओ त्से-तुङ		40.00
11. सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना माओ त्से-तुङ		35.00
12. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : चुने हुए दस्तावेज और लेख (खण्ड 1)		35.00
13. डब्ल्यूएसएफ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हार्स		50.00

पूरी पुस्तक सूची व पुस्तकें मँगाने के लिए सम्पर्क करें :  
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020  
फोन-0522-2786782  
ईमेल : janchetna@rediffmail.com

# खत्म करो पूंजी का राज! लड़ो, बनाओ लोक स्वराज!



गांव-गांव में अलख जगाकर  
विदेशी लूट मिटाएंगे  
देशी कफनखसोटों को भी  
लड़कर मार भगाएंगे  
कसम शहीदों की भारत में  
लोक स्वराज बनाएंगे

...“देश के इतिहास के ऐसे मोड़ पर, जब समय के गर्भ में महत्वपूर्ण बदलाव के बीज पल रहे हैं, हम पूंजीवादी जनतंत्र की खर्चीली धोखाधड़ी और तथाकथित पंचायती राज के कपटपूर्ण शगूफे को सिरे से खारिज करने के लिए उन सबका आह्वान करते हैं जो इस व्यवस्था में छले जा रहे हैं, ठगे जा रहे हैं, लूटे जा रहे हैं और आवाज उठाने पर कुचले जा रहे हैं। इस व्यवस्था में जिनका कोई भविष्य नहीं है, वे ही नई व्यवस्था बनाने के लिए आगे आएंगे। उन्हें आगे आना ही होगा!

...सवाल आज विदेशी गुलामी बनाम स्वदेशी का नहीं है। बल्कि सवाल सम्पूर्ण पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली और पूंजीवादी सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक प्रणाली को ही नष्ट करने का है, जो अनैतिहासिक और मानवद्रोही हो चुकी है।

21वीं सदी में इतिहास के एंजेडे पर यही केन्द्रीय मुद्दा है। क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य का नारा उस पूंजीवादी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष का नारा है, जिसने देशी पूंजीपतियों की लूट के साथ ही साम्राज्यवादी देशों और उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की लूट के लिए देश के दरवाजे खोल दिये हैं।

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान पूंजीवादी जनतंत्र के सभी खांगों और छल-छद्मों का भण्डाफोड़ करते हुए वर्तमान संसदीय प्रणाली को सिरे से खारिज करने का और सरकारी पंचायती राज के असलियत को समझने का आह्वान करता है।

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान व्यापक परिवर्तन के हर मोर्चे पर सन्नद्ध होने के साथ-साथ गाँव-गाँव में, शहर के मुहल्लों और मजदूर बस्तियों में जनता की वैकल्पिक सत्ता के क्रान्तिकारी केन्द्रों के रूप में लोक स्वराज्य पंचायतों के गठन का आह्वान करता है।

हम जानते हैं कि, यह रास्ता लम्बा है। पर यही एकमात्र विकल्प है। यही इतिहास का रास्ता है। इसलिए हमारा यह संग्रामी संकल्प है कि “लोक स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम हर कीमत पर उसे लेकर रहेंगे।”

दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा, बिगुल मजदूर दस्ता, देहाती मजदूर यूनियन,  
नारी सभा और दायित्वबोध मंच की ओर से पिछले नौ वर्षों से चलाये जा रहे  
**क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान** के पर्चा संख्या-4 के अंश

प्रमुख सम्पर्क : • नौजवान भारत सभा, वी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-94 • जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8) • बिगुल, 69, बावा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ • जनचेतना डी-68, निरालानगर, लखनऊ • ‘आह्वान’ कार्यालय, कल्याणपुर, गोरखपुर • जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर • जनचेतना, 989, पुराना कटरा, युनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद • पंकज, 33, सेक्टर 15, सोनीपत • जनचेतना, भदईपुरा, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर • अजितपाल, लुधियाना, फोन: 98550-57255 ईमेल : ahwan\_campus\_times@rediffmail.com